न ट्रैक्ट सोसायटी हिसार का पुष्प नं० २

सरल सामायिक पाठ-संग्रह

[विधि—सहित]

जिसको

श्रीमान् लाला श्री कृष्णादास जी जैन सुपुत्र
लाला शम्भूदयाल जी जैन ने अपनी
स्वर्गीय पूज्य माताजी श्रीगोमती देवी
जी की पुण्य स्मृति में सकल
दिगम्बर जैन पंचान हिसार
द्वारा अपने खर्च से
प्रकाशित कराया

प्रतियां १०००

वीर निर्वाण सं० २४७३

नित्यसामायिक अथवा ।॥)—

श्रीमती गोमती देवी का
संक्षिप्त
जीवन परिचय

श्रीमती गोमती देवी का जन्म सन्-
१८८७ में रोहतक नगर में हुआ था, इन के
पिताजी का नाम श्री ला० मोहरसिंह जी था।
ये अपने तमाम भाई बहनों में विशेष प्रति-
भाशालिनी थी, अतः माता पिता का प्रेम भी
विशेषतः इनके ऊपर अधिक था। इन्होंने
रोहतक में ही सरकारी स्कूल मे पांचवीं कक्षा
तक शिक्षा प्राप्त की थी जैन पाठशाला न होने से
इन को धार्मिक शिक्षा न मिल पाई फिर भी
धर्मिक कार्यों के अन्दर इन का मन विशेष लगा

रहता था अतः नित्य प्रति अन्य क्रियाओं के
साथ कथा ग्रन्थों का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया।
यही रुचि इनको भविष्य में कार्य कारी हुई,
इनका विवाह १४ वर्ष की आयु में हिसार
निवासी ला० शंभूदयाल जी जैन के साथ कर
दिया गया। गृह कार्य भार को अच्छी
तरह सम्भल लेने के कारण सब की विश्वास
पात्री और श्रद्धा भाजन बन गई; यहां पर भी
स्वाध्याय का सिलसिला वैसा ही चलता रहा
हिसार की स्त्री समाज के अन्दर तब काफी अ-
शिक्षा थी जिसको देख कर इनके मनमें विचार
उत्पन्न हुआ कि किसी प्रकार इस अशिक्षा
रोग को इनके अन्दर से निकाल दिया
जाय जिसके लिए कर्तव्य पथ पर निकल पड़ी।

प्रातः सायं शास्त्र सभा प्रारम्भ करदी व्याख्यान भी देती, नतीजा यह हुआ कि प्रायः सभी स्त्रियों को पढने का तथा स्वाध्याय करने का चाव लग गया, और वही चाव अब तक विद्यमान है। हिसार की स्त्री समाज के उपर उनका बहुत बड़ा उपकार है। इनके कई सन्तान हुई उनमें इस समय भी ४ पुत्र तथा २ पुत्रियां हैं। प्रायः वे सभी शिक्षित और योग्य हैं।

इनकी जीवन लीला सन् १९४४ में शान्ति पूर्वक समाप्त हुई। उनके सुपुत्र लाला श्रीकृष्ण दासजी ने उनकी ही पुण्य स्मृतिमें इस पुस्तक को प्रकाशित करने का सत्साहस किया है। अतः धन्यवाद के पात्र है। आशा है पाठक जन इस से लाभ उठावेंगे। प्रकाशक—

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ निवेदन ॥

आपके हाथ में पहुंची हुई यह सरल सामायिक पाठ नाम की पुस्तक जैन ट्रैक्ट सोसायटी हिसार का दूसरा पुष्प है। इससे पहले नित्य पूजा संग्रह नाम का प्रथम पुष्प छप कर प्रकाशित हो चुका है।

वैसे तो जैन समाज में अनेक भाषाओं के हर प्रकार के धार्मिक ग्रंथ मौजूद हैं, परन्तु ऐसी कोई भी पुस्तक अभी तक हमारे देखने में नहीं आई जिसमें साधारण से साधारण पुरुष को भी

सामायिक के लिये शुरु से आखीर तक सारी सामग्री सुलभ रीति से क्रम वार मिल जाये, इस कमी को ध्यान में रखते हुए यहां की ट्रैक्ट सोसायटी ने यह अनुभव किया कि किसी प्रकार इस कमी को जहां तक संभव हो सके शीघ्र दूर कर दिया जाय। ऐसी पुस्तक को छपवाने का सारा खर्च लाला रघुवीरसिंह जी सर्राफ ने देना स्वीकार किया था, परन्तु जैसे ही यह मालुम हुआ कि लाला श्रीकृष्णदास जी ने भी ऐसी पुस्तक को छपवाने का इरादा किया हुआ है, और कुछ उपयोगी मसाला भी संग्रह कर रक्खा है तैसे ही सोसायटी के मेंबरान ने उनसे प्रार्थना की कि इसको सोसायटी के मातहत छपवादें,

ताकि अनेक सज्जनों से संग्रहीत उपयोगी सामग्री भी इसमें सम्मिलित की जासके, जिसको उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा साथ ही इसके इस पुस्तक संबन्धी सारा खर्च भी देना स्वीकृत कर लिया जिसके वे लिये कमैटी की तरफ से अनेक धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके संग्रह में बाबू महावीर प्रसाद जी वकील, लाला किशोरचन्द जी, लाला देवकुमार जी लाला श्रीकृष्णदास जी लाला रघुनाथ सहाय जी तथा श्रीमान् पण्डित सूर्यपाल जी शास्त्री "प्रभाकर" ने विशेष सहयोग दिया है, और पं० तिलोकचन्द जी ने प्रेस कापी तैयार कर हमारी

मदद की है। अतः इन सबके विशेष रीति से आभारी है।

इस पुस्तक में जिनवाणी संग्रह, मेरी भावना, कल्पवृक्ष आदि पुस्तकों की सहायता ली गई है अतः उन सब का भी आभार मानते हैं। लाला रघुवीरसिंह जी सराफ के स्वीकृत खर्च से सोसायटी का तीसरा पुष्प शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है जिसमें तत्वार्थ सूत्र मूल व भाषा तथा भक्तामर स्तोत्र संस्कृत व भाषा अर्थ सहित होगा, पाठक गण धैर्य रक्खें।

अगर इसमें कोई अशुद्धि रह गई हो तो कृपया सुधार लें, और उस की सूचना भी

सोसायटी को अवश्य देदें ताकि अगर समाजने इसको उपयोगी जानकर अपनाया तो अगले संस्करण में सुधारदें।

प्रकाशक—

* प्रस्तावना *

देव—पूजा गुरूपास्ति-
स्वाध्यायः संयमस्तपः
दानं चेति गृहस्थानां
षट् कर्माणि दिने दिने ॥

(गृहस्थ-धर्म)

जिस प्रकार आचार्यों ने मुनियों को प्रतिदिन के लिये षडावश्यक कर्म का प्रतिपादन किया है उसी प्रकार गृहस्थों के लियेभी षट्कर्म करने आवश्यक बतलाये हैं। इनका पालन करना

आवश्यक ही नहीं प्रत्युत अत्यावश्यक है। इनमें से प्रति दिन किसी भी कर्तव्य के न करने से गृहस्थ धर्म में कमी आजाती है। गृहस्थों के वे प्रति दिन के षट् आवश्यक कर्म इस प्रकार है। १ देवपूजा २ सद्गुरु वंदन ३ स्वाध्याय ४ संयम ५ सामायिक (तप) ६ दान। सामायिक करना ध्यान का ही अङ्ग है। अतः प्रतिदिन सामायिक अवश्य करना चाहिये।

अशांत आत्मा में प्रति समय नाना प्रकार के राग द्वेषात्मक संकल्प विकल्प उठते रहते हैं जिससे चित्त चंचल तथा दुःखी बना रहता है इस लिये प्रत्येक कार्यमें असुविधा बनी

रहती है यही कारण है जीव सुख चाहता हुआ भी दुःखी बना रहता है। इससे सिद्ध होता है कि सुखी होने के लिये आत्मा में स्थिर साम्य भाव होने की परमावश्यकता है।

गृहस्थों को देव पूजा जितनी आवश्यक बतलाई है उतना ही आवश्यक सामायिक कर्म बतलाया गया है। क्योंकि पूजा करने से जब कि पुण्य बंध होता है, तब सामायिक से निर्जरा होती है इस लिये इस कार्य को तो और भी विशेष मुख्यता देनी चाहिये आज कल देवपूजा के लिये जितना जोर दिया जाता है उतना लक्ष्य इस कार्य की तरफ नहीं दिया जाता, यही कारण

है कि जैन समाज का अधिक तर समुदाय इस कार्य से अनभिज्ञ है। सामायिकके बिना शुद्धात्मा का अनुभव होता ही नहीं है। मन वचन कायकी एकाग्रता से स्वात्मानुभूति जिस प्रकार हो सकती है वह भला और क्रियाओं के करने से कहां हो सकती है।

राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मत्सर, पाप, कषाय, आदि विभाव इस आत्मा के प्रबल शत्रु हैं इनका नाश करने के लिये आत्मा को भी बलवान बनाना चाहिये। जिस प्रकार शरीर को पुष्ट करने के लिये पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आत्म- बल

बढाने के लिये समता भाव रूप सामायिक की परम आवश्यकता है। यही आत्म विशुद्धि का मूल कारण है। अतः अपनी शक्ति तथा समय अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को सामायिक अवश्य करना चाहिये।

इस पुस्तक मे सामायिक के उपयोगी सामायिक पाठ, वीनती, वैराग्य-भावना, भजन आदि सभी आवश्यक चीजोंका समावेश करदिया है जिनके नित्य मनन व पाठ करन से आत्मा में साम्यरस की वृद्धि होगी। सामायिक के पहले उसकी विधि भी आवश्यक है अतः वह भी साथ में लगा दी है आशा है आत्मानुभवी

जन इस पुस्तक से लाभ उठा कर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे ।

सामायिकोपयोगी समय, स्थान, आसन,

समय—पूर्व आचार्यों ने त्रिकाल (प्रातः मध्याह्न और सायम् कालीन) सामायिक करने का उपदेश दिया है इनमें भी प्रातः कालीन सामायिक को बहुत विशेषता दी है क्यों कि यह समय पूर्ण शांत तथा निस्तब्ध रहता है । पूर्व दिन की थकावट भी पूर्णरूप से नहीं रहने पाती, दिमाग ताज़ा व स्वस्थ रहता है अतः इन तमाम बातों को देखते हुए सामायिक के लिये मंगल

मय प्रभात ही सर्वोत्तम माना है। सूर्योदय से दो घंटे पहले का समय ब्राह्म मुहूर्त कहाजाता है क्यों कि उस समय आत्मानुभवी पुरुष अपने मन को सामायिक में लगा कर अलौकिक रस का पान करता है। प्रातःकालीन क्रियाओं के ऊपर ही सारा दैनिक कर्म निर्भर है अतः सवेरे ही प्रारम्भ में सामयिक अवश्य कर लेनी चाहिये। माध्यान्हिक तथा सायंकालीन सामायिक का समय क्रमसे दुपहर के बारह बजे या उससे कुछ पूर्व तथा शाम को संध्या समय अर्थात् दिन और रात्रि के मिलते समय का है, इस लिये ठीक समय पर उत्साहित होकर सामायिक में बैठ जाना चाहिये।

स्थान—आत्मा के भावों को स्थिर व अस्थिर करने में तथा बिगाड़ने या सुधारने में स्थान भी बहुत बड़ा कारण है। मन वैसे ही अस्थिर तथा चंचल है, ऐसी दशा में अशांत तथा उपद्रव सहित जगह में तो और भी चंचल या स्वतन्त्र हो सकता है, और एकाग्र चित्त होने की बजाय उच्छृङ्खल हो जाता है, अतः सामायिक के लिये जंतु रहित स्वच्छ तथा निरापद स्थान की परम आवश्यकता है। शीत और उष्ण की बाधा भी नहीं होनी चाहिये, ऐसा स्थान मन्दिर, मठ, तथा अपने ही घरका एकांत स्थान सामायिक के लिये उपयोगी हो सकता है।

आसन—सामायिकके लिये आसन की स्थिरता भी परम आवश्यक है। इस के लिये खड्गासन, पद्मासन, अर्धपद्मासन, ही उपयुक्त बतलाये गये हैं। आज कल सुखासन, (पलत्थी) से भी सामायिक कर लेते हैं। इन आसनों से विशेष कष्ट नहीं होता, अतः अपनी सुविधानुसार किसी भी निश्चित आसन से सामायिक करें।

सामायिक करने वाला पुरुष दीर्घशंका (टट्टी) लघुशंका (पेशाब) आदि बाधाओं से निवृत होकर बैठे। अनावश्यक परिग्रह दूर करके अपने शरीर पर रहने वाले कपड़े और चोटी वगैरह को भी इस प्रकार बांध लेवे जिस से उड़

कर उसके ध्यान में वाधा न डाल सकें। अतः सामायिक के पहले इन तमाम बातों पर अवश्य ध्यान रखलें।

समायिक करने की विधि

सामायिक करने वाला पुरुष प्रथम ही शुद्ध होकर जहांतक हो सके कमती से कमती शुद्ध वस्त्र पहन कर एकान्त स्थान पर जाकर शुद्ध काठ का पट्टा, चटाई, चौकी, अथवा पाषाण के आसन पर बैठ कर सामायिक करने की प्रतिज्ञा करे कि मैं इतने समय तक तमाम चित्त बृत्तियों को रोककर शुद्ध भावसे आत्मस्वरूप के चिन्तवन

रूप सामायिकको करूंगा, इस समय सामायिक के काल तक अपने शरीर पर रहने वाले परिग्रह को छोड़कर अन्य का त्याग करदे। पश्चात् पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ, जिधर मुख कर के सामायिक करनी हो, दोनों हाथों को लंबा कर दोनों पैरों के बीच में चार अङ्गुल का फासला दे, सीधा खड़ा होजावे। फिर नौ वार 'णमोकार' मन्त्र का धीरे २ उच्चारण कर साष्टाङ्ग नमस्कार करे फिर उसी दिशा में पहले की तरह खड़ा होकर तीन वार णमोकार मन्त्र पढ, तीन आवर्तन तथा एक शिरोनति करें। अपने दोनों हाथों को कमलके डोडे के समान जोड़ कर बांये हाथ की तरफ नीचे घुमाते हुए दाहिने हाथ की तरफ

ऊपरले आने की क्रिया को आवर्तन तथा छाती तक मस्तक को झुका कर जोड़े हुए हाथों से लगाने को शिरोनति कहते हैं। इस क्रिया के करने से उस दिशा में स्थित समस्त सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, तथा कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करनेका अभिप्राय होता है। ऐसा करने के बाद दाहिने तरफ घूमते हुए दक्षिण, पश्चिम उत्तर दिशा में भी प्रत्येकमें तीन २ बार णमोकार-मन्त्र तीन २ आवर्तन तथा एक २ शिरोनति करे बादमें जिस तरफ मुंह करके कायोत्सर्ग आदि क्रियायें शुरु की थी उसी दिशा में खड्गासन, पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन से बैठ कर सामायिक प्रारम्भ करे। बांये पैर को दहिनी जांघ

पर तथा दाहिने पैर को बांये जांघ पर रख कर गोदमें बांये हाथके ऊपर दाहिने हाथ को रखना पद्मासन कहलाता है। खड्गासन की विधि पहले कह चुके हैं। तदनन्तर अपनी शक्ति प्रमाण और समय की सुविधा के अनुसार राग, द्वेष छोड़ते हुए समता भाव पूर्वक पुस्तकमें दिये गये सामायिक पाठ व अन्य स्तोत्रों को अर्थ समझते हुए मनमें अथवा धीरे २ स्वर से पढ़ें, (जिस को कण्ठस्थ याद है, वह विना देखे ही पाठ कर सकता है, और जिसको पाठ कण्ठस्थ नहीं है, वह पुस्तकको सामने चौकी आदि पर रखकर शुद्ध रीतिसे पाठ करसकता है) पाठ करने के बाद अगर समय काफी है तो णमोकार मन्त्र की माला फेरना

चाहिये। अगर समय कुछ कमती है तो उसके माफिक परमेष्ठि के वाचक मन्त्रों का जाप्य कर सकता है, इसके लिए सोलह, छः, पांच, चार, दो, एक, अक्षर वाले मंत्र इस प्रकार समझ लेना चाहिए। पंच परमेष्ठि के वाचक और भी मंत्र हो सकते हैं।

सोलह अक्षरों का मंत्र--अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व साधुभ्यो नमः।

छः अक्षरों का—अरहंत सिद्ध ।

पांच ,, असिआउसा (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुके प्रथम अक्षरों से बना)

चार अक्षरों का—अरिहंत ।

दो अक्षरोंका मंत्र—सिद्ध ।
एक „ ॐ (अरिहंत, अशरीर, आचार्य
उपाध्याय, मुनी)

यह मंत्र इनके प्रथम अक्षरों को लेकर संस्कृत व्याकरण पद्धति से बनता है, इसको परमेष्ठी वाचक बीजाक्षर भी कहते हैं । जाप्य करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि अपने हृदय में आठ पत्ते वाला कमल विचारलो । हर एक पत्ते पर बारह बारह बिंदु भी विराजमान करो, तथा कमल पत्र की गोलाकार जड में भी बराबर के फासले पर बारह बूंद सोचलो । इस प्रकार १२×९=१०८ सब मिल १०८ बिंदु होजाती है

इन पर पूर्व दिशा के पत्ते पर स्थित बूंद से प्रारम्भ कर हर एकपर णमोकार मंत्र का उच्चारण करे। यह कमल जाप्य कही जाती है। दूसरा तरीका हाथ की अंगुलियों पर जाप्य करने का है दोनों हाथकी हरएक अंगुलियोंमें ३-३ पोरवे हैं, इस प्रकार एक हाथ की चारों उंगुलियों में बारह पोरवे हुए। दाहने हाथ के एक एक पोरवे पर णमोकार मंत्र का जाप्य करना चाहिये, जब तमाम अंगुलियों पर फेरले तब बांये हाथ की प्रथम अंगुली के प्रथम पोरवेपर अंगुठा रखे इस प्रकार नौ बार तमाम अंगुलियों पर फेर लेने से १२+९=१०८ बार होजाते हैं। जो इन दोनों ही विधियों को नहीं कर सकता है, उसके लिए

सूत की माला ठीक रहेगी, उसमें भी १०८ गांठ होती है हर एक के उपर जाप्य करना चाहिये। माला फेरनेके पहले तथा पीछे तीन २ "बार सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रेभ्यो नमः" यह भी पढ़ लेना चाहिये इतनी क्रियाओंके करलेने के बाद उसी दिशा में खड़ा होकर पुनः नौबार णमोकार मंत्र पढ़े और एक साष्टाङ्ग नमस्कार करे, इस समय चारों दिशा में घूमने की आवश्यकता नहीं है। सामायिक का काल उत्कृष्ट छः घड़ी मध्यम चारघड़ी तथा जघन्य दो घड़ी कहा गया है। एक घड़ी का समय प्रायः चौबीस मिनिटके बराबर जानना चाहिये, तमाम क्रियायें विनय तथा भक्ति पूर्वक करे।

(नोट) जाप्य मंत्र १०८ वार ही जपना चाहिये, कम नहीं। यह इसलिये कि हर एक मनुष्य को प्रति दिन संरम्भ[1], समारम्भ[2], आरम्भ[3], मन, वचन, काय, कृत[4], कारित[5], अनुमोदना[6], तथा क्रोध, मान, माया, लोभ; इन द्वारा ही पाप लगता रहता है इस लिये परस्पर गुणे से ३×३×३×४=१०८ होजाते हैं, अतः उनकी शांति के लिये

१—कार्य करने का विचार २—कार्य आरम्भ करने से पहिले सामग्री का जोड़ना ३—शुरू कर देना ४—स्वयं करना ५—दूसरे से करवाना ६—करते हुए की प्रसंशा करना।

१०८ बारही मंत्र जाप्य करने का विधान बत-
लाया है। यथा

संरंभ समारंभ आरम्भ,
मन वचतन कीने प्रारम्भ
कृत कारित मोदन करके,
क्रोधादि चतुष्टय धरिके
शत आठ जुइन भेदनते
अघ कीने परिछेदनते
(आलोचना पाठ)

ॐ

शुद्धात्म स्वरूपाय नमः

णमोकार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमोआइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं,

भावार्थ—अरिहंतों को नमस्कार हो। सिद्ध परमेष्ठि को नमस्कार हो आचार्यों को नमस्कार हो. उपाध्यायों को नमस्कार हो, और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो,

मङ्गल पाठ

चत्तारि मङ्गलं–अरिहंत मङ्गलं, सिद्ध मङ्गल, साधु मङ्गलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मङ्गलं, चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साधु लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि,–अरहंत सरणं पव्वज्जामि सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साधु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि

भावार्थ—जीवों को ये चार ही मंगल स्वरूप हैं

१ अरहंत भगवान कल्याण करने वाले हैं।

२ सिद्ध भगवान कल्याण करने वाले हैं।

३ साधु महाराज कल्याण करने वाले हैं। ४ केवलि भगवान द्वारा प्रणीत धर्म कल्याण करने वाला है।

संसार में चार ही उत्तम हैं।

१—अरहंत भगवन उत्तम है। २—सिद्ध भगवान उत्तम हैं। ३—साधु महाराज उत्तम हैं। ४—केवलि भगवान से कहा गया धर्म उत्तम है।

संसार में इन्हीं चार के शरणमें प्राप्त होता हूं।

१—अरहंत भगवान के शरण में प्राप्त होता हूं।
२—सिद्ध भगवान के शरण में प्राप्त होता हूं।

३—साधु परमेष्ठि के शरण में प्राप्त होता हूं।
४—केवली भगवान के द्वारा उपदिष्ट धर्म की शरण में प्राप्त होता हूं।

वर्तमान कालीन
२४ तीर्थंकरों के नाम

श्री आदिनाथ जी अजितनाथ जी संभवनाथ जी
अभिनन्दननाथ जी सुमतिनाथ जी पद्मप्रभू जी
सुपार्श्वनाथ जी चन्द्रप्रभु जी पुष्पदन्त जी
शीतलनाथ जी श्रेयांसनाथ जी वासुपूज्य जी
विमलनाथ जी अनन्तनाथ जी धर्मनाथ जी
शान्तिनाथ जी कुन्थुनाथ जी अरः नाथ जी

१३ विभ्रम नशाय ॥ २ ॥ तुम गुणचिंतत निज परविवेक[१४]। प्रघटै, विघठें आपद अनेक ॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्तविकल्प मुक्त ॥ ३ ॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमात्म परमपावन अनूप ॥ शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन। स्वाभाविक परिणतिमय अछीन ॥ ४ ॥ अष्टादश[१५] दोपविमुक्त[१६] धीर। स्वचतुष्टय[१७] मय राजत गम्भीर ॥ मुनि गणधरादि सेवत

---

१३ मिथ्यात्व, १४ आपा पर का भेद विज्ञान १५ भूख, प्यास बीमारी, बुढापा, जन्म, मरण, भय राग, द्वेष, गर्व, मोह, चिंता, मद, आश्चर्य, निद्रा, आरति, खेद, पसीना, १६ रहित,

पद्धरि छन्द

जय वीतराग विज्ञानपूर[5]। जयमोह तिमिर[6] को हरन सूर[7]॥ जय ज्ञानअनन्तानंतधार। दृग[8] सुख वीरजमंडित[9] अपार[10]॥ १॥ जय परमशांतिमुद्रासमेत। भविजन[11]को निज अनुभूतिहेत। भवि भागनवश जोगेवशाय। तुम धुनि[12] ह्वै सुनि

५ केवल ज्ञान, ६ अन्धकार, ७ सूर्य, ८ दर्शन, ९ सुशोभित, १० अनन्त (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय सहित) भव्यजीवों के १२ दिव्यध्वनी

नोट:—सामायिक करते समय अथवा वीनती वगैरह पढ़ते समय ऊपर लिखे पंच परमेष्ठि अथवा किसी भी तीर्थंकर को अपने हृदयमें विराजमान कर लेना चाहिये, जिससे चित्त की स्थिरता बनी रहे।

अथ दौलतराम कृत स्तुति दोहा।

सकल-ज्ञेय[1]-ज्ञायक[2] तदपि, निजानन्दरसलीन।
सो जिनन्द्र जयवंत नित, अरिरज[3]रहस विहीन[4]॥

---

१ पदार्थ, २ जानने वाला, ३ ज्ञानावरण आदि कर्म रूप शत्रु, ४ रहित,

मल्लिनाथ जी मुनिसुव्रतनाथ जी नमिनाथ जी नेमिनाथ जी पार्श्वनाथ जी महावीर स्वामी जी

विदेह क्षेत्र के विद्यमान

२० तीर्थंकरों के नाम

श्री सीमंधर जी युगमंधर जी बाहु जी सुबाहुजी संजातक जी स्वयंप्रभू जी वृषभाननजी अनंतवीर्यजी सौरीप्रभजी विशालकीर्तिजी वज्रधरजी चन्द्राननजी चन्द्रबाहु जी भुजंगम जी ईश्वरजी नेमीश्वर जी वीरसेन जी महाभद्र जी देवयश जी अजितवीर्य जी इन सबको नमस्कार हो।

महंत। नवकेवल लब्धि[१८] रमा[१९] धरंत ॥ ६ ॥ तुम शासन[२०] सेय अमेयजीव[२१]। शिवगये[२२]जांहि[२३] जै हैं[२४] सदीव ॥ भवसागर में दुःख छारवारि। तारन को और न आपटारि[२५] ॥ ६ ॥ यह लखि निजदुःख[२६] गदहरण काज। तुमही निमित्त कारण

१८ क्षायिप सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र क्षयिक ज्ञान क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक 'लाभ' क्षायिक भोग क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य रूप नव लब्धि १९ लक्ष्मी २० धर्म, उपदेश २१ अनंत २२ भूत कालमें जा चुके, २३ वर्तमानमें जा रहे हैं, (२४ भविष्य में जावेंगे, २५ जानकर, २६ अपने

इलाज ॥ जानें तातैं मैं शरण आय । उचरौंनिज दुख जो चिरलहाय ॥ ७ ॥ मैं भ्रम्यों अपनपो

१७ २८ २९

विसरि आप । अपनाये विधिफल पुण्य पाप ॥ निजको परको करता पिछान । परमे अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ८ ॥ आकुलित भयो अज्ञानधारि

३० ३१

ज्यौं मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥ तनपरणति

दुःख रूपी रोग को दूर करने के लिये,) २७ अपनी आत्मा के स्वभाव को भूल कर २८ ग्रहण किये, २९ कर्म अर्थात पुण्य पाप रूप कर्म फल को, ३० मृगमरीचिका ३१ जल (जिस प्रकार हिरण गरमी के मौसममें अत्यन्त प्यासा होकर पानी की

में आपो चितारि । कबहूं न अनुभयो स्वपद-
सार ॥ ६ ॥ तुमको बिन जाने जो कलेश ।
पाये सो तुम जानत जिनेश ॥ पशु नारक
नर सुर गतिमंझार । भवधर धर मर्यो अनंत-
३२
बार ॥ १० ॥ अब काललब्धिबलतैं दयाल ।

तलाश में घूमता है, और बहुत दूर पड़ी हुई
चमकती हुई रेती या बालुको भ्रमसे पानी समझ
कर जाता है और दुःखी होता है उसी प्रकार यह
अज्ञानी जीव दुखी होता है) ३२ सम्यग् दर्शन
की प्राप्ति में पांच लब्धियों में से काल लब्धि मुख्य
कारण है और वह बड़ी कठिनाई तथा सौभाग्य से

तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ॥ मन शांत भयो मिटसकलद्वंद । चाख्यो स्वातम रस दुख निकंद ॥ ११ ॥ तातैं अब ऐसी करहुनाथ । बिछुरै न कभी तुमचरणसाथ ॥ तुमगुणगणको नहिं छेव[33] देव । जगतारन को तुम विरद एव ॥ १२ ॥ आतम के अहित विषय कषाय । इनमें मेरी परिणति न जाय ॥ मैं रहूं आपमें आप लीन । सो करो होहुं ज्यो निजाधीन ॥ १३ ॥ मेरे न चाह कुछ और[34] ईश । रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ॥ मुझ

मिलती है, ३३ अन्त, अखीर ३४ सम्यग् दर्शन, सम्य ज्ञान सम्यक् चारित्र रूप खजाना

कारज के कारन सुआप । शिव करहु हरहु मम मोहताप[३५] ॥ १४ ॥ शशि शांत करन तपहरनहेत स्वयमेव तथा तुम कुशल[३६] देत ॥ पीवत पियूष[३७] ज्यों रोग जाय त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥ १५ ॥ त्रिभुवन तिहुंकाल मंझार कोय । नहिं तुम विन निजसुखदाय होय ॥ मो उर यह निश्चय भयो आज । दुखजलधि[३८] उतरन तुम जिहाज ॥ १६ ॥

---

३५ संताप को दूर करने वाला, ३६ कल्याण, सुख ३७ अमृत ३८ संसार समुद्र

॥ दोहा ॥

तुम गुणगणमणि[३९] गणपती[४०], गणत[४१] न पावहिंपार
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग[४२]संभार ॥

इति दौलतराम स्तुति ।

---

३९ आपके गुण समूह रूपी मणियां
४० गणाधरदेव ४१ गणना करने पर भी
४२ मन बचन काय

अथ बुधजन कृत स्तुति ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन[1], चरन आयो शरन जी। योविरद[2] आप निहार[3] स्वामी, मेट जामन[4] मरनजी ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्या भ्रमगिण्या हितकार जी ॥ १ ॥ भवविकटवन में करम बैरी, ज्ञान धन मेरो हरयो तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्टगति[5] धरतो

१—अपवित्र· २ माहात्म्य· ३ देखकर· ४ जन्म· ५ खोटी

फिरयो ॥ धन घड़ी यो धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो । अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुको लख लयो ॥ २ ॥ छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासा पैं धरैं । वसु प्रातिहार्य[६] अनन्त गुणयुत, कोटिरविछविको हरैं ॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो मो उरहरष ऐसो भयो मनु, रंक चिंतामणिलयो ॥ ३ ॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, बीनऊं

[६] अशोकवृक्ष सिंहासन, छत्र त्रय, भामण्डल, निरक्षरी दिव्यध्वनी, पुष्पवृष्टि चौसठ चांवर का ढुलना, दुंदुभि बाजे बजना,

१ स्वर्ग २ चक्रवर्ति पद

तुव चरनजी । सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन सुनो तारन तरन जी ॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी । 'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथ जी ॥ ४ ॥

इति बुधजनकृत स्तुति ।

दौलतरामजी कृत "सकल ज्ञेय ज्ञायक" स्तुति का
भावार्थ—हे भगवान् !

आपने कर्मोंको सर्वथा नष्ट कर दिया है इस लिये अनंतचतुष्टय (अनन्त दर्शन अनंत ज्ञान अनन्त सु और अनन्त वीर्य) को धारण कर सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी रूप देवत्वपने को प्राप्त कर लिया है। आप संसारी जीवोंके मिथ्यात्व अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान हैं। आपकी ध्यानस्थ परमदिगम्बर शांत मुद्रा ही भव्य जीवोंको अपनी आत्मानुभूति में कारण है इसीलिये आपकी दिव्यध्वनी से अज्ञान भाव स्वयमेव नष्ट होजाता है। आपके गुणोंका स्मरण करने मात्र से भेद विज्ञान प्रगट होजाता है तथा अनेक आपत्तियां भी नष्ट होजाती

हैं। आप जन्म मरण आदि अठारह दोषों से रहित हैं इसीलिये सारे विभावों से रहित होते हुए स्वाभाविक दशामें प्रगट होचुके हो, आप मुनि, गणधर आदि सबसे पूज्य हैं। जितने भी जीव अब तक सिद्ध होचुके है या आगे होंगे अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं यह सब आपके उपदेश का प्रभाव है। यह संसार महादुःख का स्थान है इससे उद्धार करनेके लिये आपके सिवा और कोई समर्थ नहीं है। ऐसा विचार कर ही अपने दुखोंकी शांति के लिये आपके पास आया हूं उनके दूर करनेमें आप ही निमित कारण हैं।

यहां यह बात समझ लेनी चाहिये कि भगवान कुछ देते लेते नहीं हैं, परन्तु उनकी स्तुति अथवा

भक्ति करने से हमारे परिणाम शांत होजाते हैं उससे राग द्वेष की प्रवृत्ति कम होजाती है इस लिये पहले बांधे हुए अशुभ कर्मों में फल देनेकी शक्ति बहुत कम होजाती है। जिसको हम सुख कहते हैं इस लिये कविवर ने भगवान को दुख दूर करने में निमित कारण कहा है। अगर उन को ही दुख का हर्ता अथवा सुखका कर्ता मान लें तो ईश्वर कर्तृत्व का दोष आजाता है।

अनादिकाल से मैं अबतक अपनी आत्मा को नहीं पहचानने की वजह से संसारमें घूम रहा हूं तथा अपने आप किये हुए शुभ अशुभ कर्म या उसके फलमें सुखी दुखी हो रहाहूं। जिस प्रकार मृग अपनी गलती से रेत को चमकती देख कर जल

के भ्रम से दौड़ता है और जल न मिलने पर दुखी होता है उसी प्रकार मैं भी शरीर में आत्म बुद्धि कर दुखी हो रहाहूं। आपके स्वरुप न जानने से ही चतुर्गति के दुख भोगने पड़ रहे हैं। अब काललब्धि वश आपका दर्शन प्राप्त हुवा है इस लिए सब चिंतायें मिट गई हैं। तथा मन भी शांत होगया है। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि आपके चरण कमलों का चिंतवन कभी भी मेरे हृदय से दूर न हो। मुझे अब किसी भी सांसारिक वस्तु की इच्छा नहीं है। हे प्रभु मैं तो यही चाहताहूं कि आत्माके अहित करने वाले

जो विषय और कषाय हैं उनमेंमेरी प्रवृत्ति न होने पावे। मैं अपनी आत्मामें लीन होकर रत्न त्रय (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र,) को प्राप्त करलूं। जिस प्रकार अमृत पानेसे जन्म मरण का रोग नष्ट होजाता है उसी प्रकार आपके ध्यान से यह संसार भी नष्ट होजावेगा। तीन लोक और तीन काल में आपको छोड़ कर इस संसार में मोक्ष सुख को प्राप्त कराने वाला और कोई नहीं है इस लिये मैंने यह निश्चय कर लिया है कि भव्य जीवोंको संसार समुद्र से पार करने के लिये आप ही जहाज के समान है और कोई नहीं है।

* सामायिक पाठ- *

संस्कृत

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ १ ॥

नित देव! मेरी आतमा
धारण करे इस नेम को,
मैत्री करे सब प्राणियों से
गुणिजनों से प्रेम को।
उनपर दया करती रहे,
जो दुःख-ग्राह-गृहीत हैं।
उनसे उदासी सी रहे,
जो धर्म के विपरीत हैं॥ १॥

शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं,
विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तुशक्तिः ॥ २ ॥

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी,
दीजिये मुझ में प्रभो ।
तलवार को ज्यों म्यान-से,
करते अलग हैं हे विभो ।
गतदोष आत्मा शक्तिशाली,
है मिली मम अङ्ग से ।
उसको विलग उस भांति,
करनेके लिए ऋजु[1] ढङ्गसे ॥ २ ॥

[1] सरल

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥ ३ ॥

हे नाथ मेरे चित्त में,
समता सदा भरपूर हो।
सम्पूर्ण ममता की कुमति,
मेरे हृदय से दूर हो।
वन में, भवन में, दुःख में,
सुखमें नहीं कुछ भेद हो।
अरि[1]-मित्रमें, मिलने-बिछुड़ने,
में न हर्ष न खेद हो ॥ ३ ॥

१ शत्रु

मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ ४ ॥

अतिशय घनी तम-राशि[1] को,
दीपक हटाते हैं यथा ।
दोनों कमल-पद आपके,
अज्ञान-तम हरते तथा ।
प्रतिबिम्बसम[2] स्थिररूप वे,
मेरे हृदय में लीन हों ।
मुनिनाथ ! कीलित-तुल्य वे,
उर पर सदा आसीन हों ॥ ४ ॥

१ अन्धकार, २ दर्पण में छाया के समान

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः
प्रमादतः संचारिता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता-
स्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥ ५ ॥

यदि एक-इन्द्रिय आदि देही,
घूमते फिरते मही ।
जिनदेव ! मेरी भूल से,
पीड़ित हुए होवें कहीं ।
टुकड़े हुए हों, मल गए हों,
चोट खाये हों कभी ।
तो नाथ ! वे दुष्टाचरण,
मेरे बनें झूठे सभी ॥ ५ ॥

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना,
मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

सन्मुक्ति के सन्मार्ग से,
प्रतिकूल[1] पथ मैंने लिया ।
पञ्चेन्द्रियों चारों कषायों,
में स्वमन मैं ने दिया ।
इस हेतु शुद्ध चरित्र का जो,
लोप मुझ से हो गया ।
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को,
हो प्राप्त प्रभु ! करिये दया ॥ ६ ॥

---

१ विपरीत

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं,

मनोवचःकायकषायनिर्मितम् ।

निहन्मि पापं भवदुःखकारणम्,

भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

'चारों कषायों से वचन, मन,

काय से जो पाप है—

मुझ से हुआ, हे नाथ ! वह,

कारण हुआ भव-ताप है ।

अब मारता हूं मैं उसे,

आलोचना—निन्दादि से ।

'ज्यों सकल विषको वैद्यवर,

है मारता मन्त्रादि से ॥७॥

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

जिनदेव ! शुद्ध चरित्र का,
मुझ से अतिक्रम[१] जो हुआ।
अज्ञान और प्रमाद से,
व्रतका व्यतिक्रम[२] जो हुआ।
अतिचार[३] और अनाचरण[४],
जो जो हुए मुझ से प्रभो !
सब की मलिनता मेटने को,
प्रतिक्रम करता विभो ! ॥८॥

१ उलंघन, २ घात, ३ दोष, ४ त्याग,

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

मन की विमलता नष्ट होने,
को अतिक्रम है कहा ।
औ शीलचर्या के विलंघन,
को व्यतिक्रम है कहा ।
हे नाथ ! विषयों में लपटने,
को कहा अतिचार है ।
आसक्त[1] अतिशय विषय में,
रहना महाऽनाचार है ॥९॥

१ लगना,

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं,
मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

यदि अर्थ, मात्रा, वाक्यमें,
पदमें पड़ी त्रुटि हो कहीं ।
तो भूल से ही वह हुई,
मैंने उसे जाना नहीं ।
जिनदेववाणी ! तो क्षमा,
उसको तुरत कर दीजिये ।
मेरे हृदय में देवि ! केवल,
ज्ञान को भर दीजिए ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः

स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।

चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने,

त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देव ॥११

हे देवि ! तेरी वन्दना,

मैं कर रहा हूं इस लिये ।

चिन्तामणिप्रभ है सभी,

बरदान देने के लिये ।

परिणाम शुद्धि, समाधि मुझमें,

बोधि[१] का संचार हो ।

हो प्राप्त स्वात्मा की तथा,

शिवसौख्यकी, भव पार हो ॥११॥

१ ज्ञान

यः स्मर्यते सर्व्वमुनींद्रवृन्दैः
यः स्तुयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२।

मुनिनायकों के वृन्द[1] जिसको,
स्मरण करते हैं सदा ।
जिसका सभी नर अमरपति[2],
भी स्तवन करते हैं सदा ।
सच्छास्त्र वेद-पुराण जिसको,
सर्वदा हैं गा रहे ।
वह देव का भी देव बस,
मेरे हृदय में आरहे ॥१२॥

१ समूह, २ इन्द्र,

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः
समस्तसंसार्गविकारवाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

जो अन्तरहित[1] सुबोध-दर्शन,
और सौख्य-स्वरूप है ।
जो सब विकारों से रहित,
जिससे अलग भवकूप है ।
मिलता बिना न समाधि जो,
परमात्म जिसका नाम है ।
देवेश वह उर आ बसे,
मेरा खुला हृद्धाम है ॥१३॥

१ अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख ।

निषीदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालं ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

जो काट देता है जगत के,
दुःख-निर्मित जाल को ।
जो देख लेता है जगत की,
भीतरी भी चाल को ।
योगी जिसे हैं देख सकते,
अन्तरात्मा जो स्वयम् ।
देवेश वह मेरे हृदय—
पुरका निवासी हो स्वयम् ॥१४

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो,
यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

कैवल्य के सन्मार्ग को,
दिखला रहा है जो हमें ।
जो जनन के या मरण के,
पड़ता न दुख-सन्दोह में ।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी,
दूर है कुकलङ्क से ।
देवेश वह आकर लगे,
मेरे हृदय के अङ्क से ॥१५॥

क्रोड़ीकृताशेषशरीरिवर्गाः

राागाद्यो यस्य न सन्ति दोषाः ।

निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः

स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

अपना जिया है निखिल तनु—

धारी निबहने ही जिसे ।

रागादि दोष—व्यूह भी,

छू तक नहीं सकताजिसे ।

जो ज्ञानमय है, नित्य है,

सर्वेन्द्रियों से हीन है ।

जिनदेव देवेश्वर वही,

मेरे हृदय में लीन है ॥ १६ ॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः
सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१९॥

संसार की सब वस्तुओं में,
ज्ञान जिसका व्याप्त है ।
जो कर्म-बंधन-हीन, बुद्ध,
विशुद्ध, सिद्धि प्राप्त है ।
जो ध्यान करने से मिटा,
देता सकल कुविकार को ।
देवेश वह शोभित करे,
मेरे हृदय-आगार को ॥१७॥

न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः,
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

तम-संघ जैसे सूर्य-किरणें,
को न छू सकता कहीं।
उस भांति कर्म-कलंक दोषा-
कर जिसे छूता नहीं।
जो है निरञ्जन वस्त्वपेक्षा,
नित्य भी है एक है।
उस आप्त प्रभु की शरण में हूं,
प्राप्त जो कि अनेक है ॥१८॥

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥

यह दिवसनायक लोकका,
जिसमें कभी रहता नहीं ।
त्रैलोक्य-भासक ज्ञान-रवि,
पर है वहां रहता सही ।
जो देव स्वात्मा में सदा,
थिर—रूपता को प्राप्त है ।
मै हूं उसी की शरण में,
जो देववर है, आप्त है ॥१६॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,

विलोक्यते स्पष्टमिदं त्रिविक्रम् ।

शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,

तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

अवलोकने पर ज्ञान में,

जिसके सकल संसार ही-

है स्पष्ट दिखता, एक से,

है दूसरा मिलकर नहीं ।

जो शुद्ध, शिव, है शान्त भी है,

नित्यता को प्राप्त हैं ।

उसकी शरण को प्राप्त हूं,

जो देववर है, आप्ता है ॥२०॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा,
विषादनिद्राभयशोकचिन्ता ।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपंच-
स्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

वृक्षावली जैसे अनल की,
लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक मन्मथ मान को,
रहने दिया जिसने नहीं ।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिंता,
भी न जिसको व्याप्त है ।
उसकी शरण में हूं गिरा,
जो देववर है आप्त है ॥२१॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,

विधानतो नो फलको विनिर्मितः।

यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः,

सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥

विधिवत शुभासन घास का,

या भूमि का बनता नहीं।

चौकी शिला को ही शुभासन,

मानती बुधता नहीं।

जिससे कषायारीन्द्रियां,

खटपट मचाती हैं नहीं।

आसन सुधी जन के लिये,

है आत्मा निर्मल वही ॥२२॥

न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

हे भद्र ! आसन, लोक-पूजा,
संघ की संगति तथा ।
ये सब समाधी के न साधन,
वास्तविक में हैं प्रथा ।
सम्पूर्ण बाहर—वासना को,
इस लिये तू छोड़ दे ।
अध्यात्म में तू हर घड़ी,
होकर निरत रति जोड़ दे ॥२३॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥२४॥

जो बाहरी हैं वस्तुयें,
वे हैं नहीं मेरी कही ।
इस भांति हो सकता कही ।
उनका कभी मैं भी नहीं ।
यों समझ बाह्यडम्बरों को,
छोड़ निश्चित रूप से ।
हे भद्र! हो जो स्वस्थ तू,
बच जायगा भावकूप से ॥२४॥

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमान-
स्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,
स्थितोपिसाधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

निजको निजत्मा-मध्य में ही,
सम्यगवलोकन करे।
तू दर्शन-प्रज्ञानमय है,
शुद्ध से भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त है,
तू सत्य इसको मानना।
चाहे कहीं भी हो समाधि-
प्राप्त उसको जानता। २५।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,

विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।

बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,

न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

मेरी अकेली आत्मा,

परिवर्तनों से हीन है ।

अतिशय विनिर्मल है सदा,

सद्ज्ञान में ही लीन है ।

जो अन्य सब हैं वस्तुयें,

वे ऊपरी ही हैं सभी ।

निज कर्म से उत्पन्न हैं,

अविनाशित क्यों हों कभी ॥२६॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं,

तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।

पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः,

कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ॥२७॥

है एकता जब देह के भी,

साथ में जिसकी नहीं ।

पुत्रादिकों के साथ उसका,

ऐक्य फिर क्यों हो कहीं ।

जब अङ्ग—भरसे मनुज के,

चमड़ा अलग हो जायगा ।

तो रोंगटों का छिद्रगण,

कैसे नही खो जायगा ॥२७॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं,

यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।

ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो,

यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

संसार रूपी गहन में है,

जीव बहु दुख भोगता ।

वह बाहरी सब वस्तुओं के,

साथ कर संयोगता ।

यदि मुक्ति की है चाह तो,

फिर जीवगण! सुन लीजिए

मनसे, वचनसे, काय से,

उसको अलग कर दीजिये ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं,

संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।

विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो,

निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२६॥

देहि ! विकल्पित जाल को,

तू दूर कर दे शीघ्र ही ।

संसार वनमें डालने का,

मुख्य कारण है यही ।

तू सर्वदा सबसे अलग,

निज आत्मा को देखना ।

परमात्मा के तत्व में,

तू लीन निजको देखना ॥२६॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,

फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,

स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

पहले समय में आतमा ने,

कर्म हैं जैसे किए ।

वैसे शुभाशुभ फल यहां पर,

सांप्रतिक उसने लिये ।

यदि दूसरे के कर्म का फल,

जीव को हो जाय तो ।

हे जीवगण ! फिर सफलता,

निज कर्मकी खो जाय तो ॥३०॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,

न कोपि कस्यापि ददाति किंचन

विचारयन्नेवमनन्यमानसः,

परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥

अपने उपार्जित कर्म–फलको,

जीव पाते हैं सभी।

उसके सिवा कोई किसी को,

कुछ नही देता कभी ।

ऐसा समझना चाहिये,

एकाग्र मन हो कर सदा ।

दाता अपर है भोग का,

इस बुद्धि को खोकर सदा ॥१६।

य: परमात्माऽमितगतिवन्द्यः,

सर्व विविक्तो भृशमनवद्यः ।

शश्वदधीतो मनसि, लभन्ते,

मुक्तिनिकेतं विभव वरं ते ॥३२॥

सबसे अलग परमात्मा है,

अमितगति से वन्द्य है ।

हे जीवगण ! वह सर्वदा,

सब भांति ही अनवद्य है ।

मनसे उसी परमात्मा को,

ध्यान में जो लायगा ।

वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन,

मुक्ति-पद को पायगा ॥३२॥

इति द्वात्रिंशति वृत्तैः,

परमात्मानमीक्षते ।

योऽनन्यगतचेतस्को,

यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ ३२ ॥

पढ़कर इस द्वात्रिंश पद्यको,

लखता जो परमात्मवन्द्यको ।

वह अनन्यमन हो जाता है,

मोक्ष—निकेतनको पाता है ॥३२॥

संस्कृत सामायिक पाठ

के अनुरूप

हिन्दी सामायिक—पाठ छन्दोबद्ध ॥

ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत

हे जिनेन्द्र ! सब जीवन से,
हो मैत्री भाव हमारे ।
दुःख दर्द पीड़ित प्राणिन पर,
करूं दया हर वारे ॥
गुणधारी सत्पुरुषन पर,
हो हर्षित भाव अधिकारे ॥
नहिं प्रेम नहीं द्वेष वहां।
विपरीत भाव जो धारे ॥१॥

हे जिनेन्द्र ! अब भिन्न करनको,
इस शरीर से आतम ।
जो अनन्त शक्तीधर सुखमय,
दोष रहित ज्ञानातम ॥
शक्ति प्रगट हो मेरे में अब,
तुम प्रसाद परमातम ।
जैसे खड्ग म्यानसे काढत,
अलग होत तिम आतम ॥२॥
दुःख सुखोंमें शत्रु मित्रमें,
हो सम्मान मन मेरा ।
वन-मन्दिर में लाभ-हानिमें,
हो समता का डेरा ॥

सर्व जगत के स्थावर—जङ्गम,
चेतन जड़ उलभेरा ।
तिनमें ममत करूं नहिं कबहूं,
छोड़ूं मेरा तेरा ॥ ३ ॥
हे मुनीश ! तुम ज्ञानमयी
चरणों, को हिय में ध्याऊं ।
लीन रहे वे कीलित होवें,
थिर उनको बिठलाऊं ॥
छाया उनकी रहे सदा,
सब औगुण नष्ट कराऊं ।
मोह अन्धेरा दूर करनेको,
रत्न दीप समभाऊं ॥ ४ ॥

एकेन्द्री दो इन्द्री आदिक,
पंचेन्द्रिय पर्यन्ता ।
प्राणिन को प्रमाद वश होके,
इत उत में विचरन्ता ॥
नाश छिन्न दुःखित कीने हों,
मेले कर कर अन्ता ।
सो सब दुराचार कृत,
कल्मष दूर होहु भगवन्ता ॥५॥
रत्नत्रय मम मोक्ष मार्ग से,
उलटा चलकर मैंने ।
तज विवेक इन्द्रिय वश होके,
अरु कषाय आधीने ॥

सम्यक् व्रत चारित्र शुद्धिका
किया लोप हो मैंने ।
सो सब दुष्कृत पाप दूरहों,
शुद्धकिया मन मैंने ॥ ६ ॥

मन वचन काय कषाय के वश
जो कुछ पाप किया है ।
है संसार दुःख का कारण,
ऐसा जान लिया है ॥

निन्दा गर्हा आलोचन से;
ताको दूर किया है ।
चतुर वैद्य जिम मन्त्र गुणों से,
विष संहार किया है ॥ ७ ॥

मति भ्रष्ट हो हे जिन ! मैंनें
जो अतिक्रम कर डाला ।
सुआचार कर्मों में, व्यतिक्रम
अतीचार भी डाला।
हो प्रमाद आधीन कदाचित्,
अनाचार कर डाला ।
शुद्ध करण को इन दोषों के,
प्रतिक्रम कर्म सम्भाला ॥८॥
मन विशुद्धि में हानि करे जो,
वह विकार अतिक्रम है ।
शील स्वभाव उलंघन की मति
सो जाना व्यतिक्रम है ॥

विषयों में वर्तन हो जाना
अतीचार नहीं कम है ।
स्वच्छन्दी बनकर प्रवृत्ति, सब
अनाचार इकदम है ॥६॥

मात्रा पद अरु वाक्य हीन या
अर्थ हीन वचनों को ।
कर प्रमाद बोला हो मैंने
दोष सहित वचनों को ॥

क्षम्य क्षम्य ! जिनवाणि सरस्वति
शोधो मम वचनों को ।
कृपाकरो हे मात ! दीजिए
पूर्ण ज्ञान रतनों को ॥१०॥

बार बार बन्दु जिन माता !
तू जीवन सुखदाई ।
मन चिन्तित वस्तू को देवे
चिन्ता मणि सम भाई ॥

रत्नत्रय अरु ज्ञान समाधी
शुद्ध भाव इक ताई ।
स्वात्म लाभ अरु मोक्ष सुखोंकी
सिद्धी दो जिनमाई ॥११॥

सर्व साधु यति ऋषि और
अनगार जिन्हें सुमरे हैं ।
चक्रधार और इन्द्र देवगण
जिन की थुती करे हैं ॥

वेद पुराण पाठ शास्त्रों में
जिनका गान करे हैं ।
परम देव मम हृदय विराजो
तुझ में भाव भरे हैं ॥१२॥

सबको देखन जानन वाला
सुख स्वभाव सुखकारी ।
सब विकारि भावों से बाहर
जिनमें है संसारी ॥

ध्यान—द्वार अनुभव में आवे
परमातम शुचिकारी ।
परमदेव मम हृदय विराजो
भाव तुझी में भारी ॥१३॥

सकल दुःख संसार जाल के,
जिसने दूर किये हैं।
लोका लोक पदारथ सारे,
युगपत देख लिये हैं।
जो मम भीतर राजत है
मुनियों ने जान लिये हैं।
परमदेव मम हृदय विराजो
सम रस पान किये हैं ॥१४॥
मोक्ष मार्ग त्रय रत्न मयी,
जिसका प्रगटावन हारा।
जन्म मरण आदि दुःखों से
सब दोषों से न्यारा ॥

नहिं शरीर नहिं कलंक कोई,
लोका लोक निहारा ।
परमदेव मम हृदय विराजो,
तुम विन नहिं निस्तारा ॥१५॥

जिनको संसारी जीवोंने,
अपना कर माना है ।
राग द्वेष मोहादिक जिसके
दोष नहीं जाना है ॥

इन्द्रिय रहितसदा अविनाशी
ज्ञान मयी यह जाना है ।
परमदेव मम हियमें तिष्ठो,
करता कल्याना है ॥ १६ ॥

जिसका निर्मल ज्ञान जगतमें,
है व्यापक सुखदाई ।
सिद्ध बुद्ध सब कर्म बन्ध से,
रहित परम जिनराई ।
जिसका ध्यानकिये क्षण क्षणमें,
सब विकार मिटजाई ।
परमदेव मम हियमें तिष्ठो,
यही भावना भाई ॥१७॥
कर्म मैलके दोष सकल नहिं,
जिसे स्पर्श कर पाते है ।
जैसे सूरज की किरणों से;
तम हट समूह जाते हैं ॥

नित्य निरञ्जन एक अनेकी,
इम मुनि गण ध्याते हैं।
उसीदेव को अपना लखकर
हम शरण आते हैं ॥१८॥
जिसमें तापकरण सूरज नहिं,
ज्ञानमयी जग भासी।
बोधभानु सुखशान्ति सुकारक
शोभ रहा सुविकासी ॥
अपने आतम में तिष्ठे हैं।
रहित सकल मल वासी ॥
उसी देव को अपना लखकर,
शरणाली भव त्रासी ॥१६॥

जिस में देखत ज्ञान दर्श से,
सकल जगत प्रतिभासे ।
भिन्न भिन्न षड् द्रव्य मयी
गुण पर्याय मम समता से ॥
शुद्ध शान्त शिवरूप अनादी,
जिन अनन्त फटिकासे ।
उसीदेवको अपना लखकर ।
शरणाली सुख भासे ॥२०॥
जिसने नाशकिये मन्मथ को,
अभिमान परिग्रह भारी ।
मन विषाद निद्रा भय चिन्ता
रती शोक दुखकारी ॥

जैसे वृक्ष समूह जलावत,
वन अग्नी भयकारी ।
उसीदेव को अपना लखकर ।
शरणाली सुखकारी ॥ २१॥

है व्यवहारविधान शिला-
पृथ्वी, तृण का संथारा ॥
निश्चय से नहिं आसन हैं ये
इन में नहिं कुछसारा ॥

इन्द्रिय विषय कषाय द्वेष से,
विरहित आतम प्यारा ।
ज्ञानी जीवोंके गुण लखकर ।
आसन उसे विचारा ॥२२॥

नहिं संथारा कारण हैगा,
निज समाधि का भाई।
नहिं लोगों से पूजा पाना।
संघ मेल सुख दाई ॥

रात दिवस निज आतममें तू,
लीन रहो गुण गाई।
छोड़ सकल भव रूप वासना।
निज में कर इस्ताई ॥ २३॥

मम आतम बिन सकल पदारथ
नहिं मेरे होते हैं।
मैं भी उनका नहिं होता हूं।
नहिं वे सुख पोते हैं ॥

ऐसा निश्चय जान छोड़ के,
बाहर निज टोहते हैं ।
उन सम हम नित स्वस्थ रहें ।
ले युक्तिकर्म. खोते हैं ॥२४॥

निज आतम में आतम देखो,
हे मन ! परम सुहाई ।
दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी,
परम शुद्ध सुखदाई ॥

चाहे जिसी ठिकाने पर हो,
हो एकाग्र सुहाई ।
जो साधु आपेमें रहते
सच समाधि उन पाई ॥२५॥

मेरा आतम एक सदा
अविनाशी गुणसागर है ।
निर्मल केवल ज्ञान मयी,
सुख पूरण अमृत घर है ।
और सकल जो मुझसे बाहर
देहादिक सब पर हैं ।
नहीं नित्य निजकर्म उदय से
बनायह नाटक घर है ॥२६॥

जिसका कुछ भी ऐक्य नहीं है;
इस शरीर से भाई ।
तब फिर उसके कैसे होंगे ।
नारी और बेटा भाई ॥

मित्र शत्रु नहिं कोई उसका,
नहिं संग साथी दाई ।
तन से चमड़ा दूर करे ।
नहिं रोम छिद्र दिखलाई २७

घरके संभोगोंमें पड़ तन–
धारी, बहु दुख पाया ।
इस संसार महावन भीतर ।
कष्ट भोग अकुलाया ॥

मन वचन काया से निश्चयकर,
सब से मोह छुड़ाया ।
अपने आतम की शुद्धी ने ।
मन में चाव बढ़ाया ॥२८॥

इस संसार महावन भीतर,
पटकन के जो कारण ।
सर्व विकल्प जाल रागादिक।
छोड़ो निशर्म निवारण ॥
रे मन ! मेरे देख आत्म को,
भिन्न परम सुख कारण ।
लीन होहु परमातम माहीं ।
जो भव ताप निवारण ॥२६।
पूर्व काल में कर्म बन्ध ।
जैसा आतन ने कीना ।
तैसाही सुख दुख फल पावे ।
होवे मरना जीना ॥

परका दिया अगर सुख दुख पावे,
यह बात सही ना ।
अपना किया निरर्थक होवे ।
सो होवे कबहू ना ॥३०॥

अपने ही बांधे कर्मों के,
फल को जिय पाते हैं ।
कोई किसी को देता नाहीं ।
ऋषि गण इम गाते हैं ।

कर विचार ऐसा दृढ़ मन से,
जो आतम ध्याते हैं ।
पर देता सुख दुख यह बुद्धि
नहीं चित्तमें लाते हैं ॥३१॥

जो परमातम सर्व दोष से
रहित भिन्न सबसे हैं ।
अमितगती आचारज वंदे ।
मन में ध्यान करे हैं ॥
जो कोई नित ध्यावे मनमें,
अनुभव सार करे हैं ।
श्रेष्ट मोक्ष लक्ष्मी को पाता ।
आनन्द ज्ञान भरे हैं ॥३२॥
इन बत्तीस पदन से भविजन,
परमातम ध्याते हैं ।
मन को कर एकाग्र स्वात्ममें ।
अव्यय पद पाते हैं ॥

सुख सागर वर्द्धनके कारण,
सत अनुभव लाते हैं ।

"सीतल" सामायिक को पाकर ।
भवो दधी तर जाते हैं ।२३।

* सामायिक पाठ *

१ प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनंत भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी ।
जन्म मरण नित किये पाप को ह्वै अधिकारी ॥
कोटि[१] भवांतरमांहिं मिलन दुर्लभ सामायिक ।
धन्य आजमैं भयो योग[२] मिलियो सुखदायक ।१।
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब ।
ते सब मन बच काय योगकी गुप्ति बिना लभ[३] ॥
आप समीप हजूर माहिं मैं खडो खडो सब ।

---

१ करोड़, २ मौका समय, ३ प्राप्त,

दोष कहूं सो सुनो करो नठ[१] दुःख देहिं जब ॥२॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी।
दुःखसहित जे किये दया[२] तिनकी नहिं आनी
बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय बितिचउपंचेंद्रिय[३ ४]।
आप प्रसादहि[५] मिटैं दोषजो लग्यो मोहि जिय ॥३॥
आपसमें इक ठौर[६] थापि करि जे दुःख दीने।
पेलि दिये पगतलें[७] दाबि करि प्राण हरीने।

---

१ नाश, दुष्ट २ करी, ३ दो इन्द्री, ४ तीन इन्द्री
५ कृपासे ६ स्थान ७ पैर के नीचे

आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥४॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि ।
यह पडिकोणो[1] कियो आदि[2] षट कर्ममांहि विधि ५

१ प्रतिक्रमण २ पहिला,

२ प्रत्याख्यान [आलोचना] द्वितीय कर्म

(इसके आदि वा अन्त में आलोचनापाठ बोलकर फिर तृतीय सामायिक कर्मका पाठ करना चाहिए)

जो प्रमादवशि[1] होय विराधे[2] जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ[3] ढेरे॥
सो सब झूंठो होउ जगतपतिके[4] परसादै।
जाप्रसादतें मिले सर्व सुख, दुःख न लाधै॥६॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ।

१ असावधानी,से २ मारे, ३ पाप ४ सर्वज्ञदेव,

किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥

निंदूहूँ मैं बारबार निज जियको गरहूँ[1]
सबविधि धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥७॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी ।
सतसंगति[2] संयोग धर्म जिन श्रद्धा,[3] धारी ॥
जिनवचनामृतधारसमा वर्षें जिनवानी ।
तो हू जीव संहारे. धिक धिक धिक हम जानी ८
इंद्रियलंपट[4] होय खोय निज ज्ञान जमा सब[5] ।

धिक्कारताहूं, ६ मिलना, ७ सम्यक् श्रद्धान, ८ इन्द्रियों के विषयों में लगा हुआ, ९ धन

अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंस कहे अघ ॥
गमना-गमन करंतो जीव विराधे भोले ।
ते सब दोष किये, निंदू अब मन बच तोले ॥९॥
आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे ।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन ! मेरे ॥
बारबार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता ।
ईर्षादिकतें भये निंदिये जे भयभीता ॥१०॥

तृतीय सामायिक भावकर्म ।

सब जीवनमें मेरे समता भाव जग्यो है ।
सब जिय मो[1] सम समता राखो भाव लग्यो है ॥

---

१ मेरेसमान

आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक ।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भावबधायक[१] ॥ १ ॥
पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पत ।
पंचहिं थावरमांहिं तथा त्रस जीव बसैं जित ॥
बेइंद्रिय तिय चउ पंचेन्द्रियमांहि जीव बस ।
तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥ २ ॥
इस अवसर में मेरे सब सम कंचन[२] अरु तृण ।
महल मसान[३] समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण ॥

---

१ बढानेवाले, २ सुवर्ण ३ स्मशान

जामन[1] मरण समान जानि हम समता कीनी ।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ॥१३॥

मेरो है इक आतम तामें ममत[2] जु कीनो ।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो ॥

मात पिता सुत बंधु मित्र तिय[3] आदि सर्व यह ।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यो गह ॥१४॥

मैं अनादि जगजालमांहिं फंस रूप[4] न जाण्यो ।
एकेन्द्रिय बे[5] आदि जंतुको प्राण हराण्यो[6] ॥

---

१ जन्म, २ प्रेम, ३ स्त्री, ४ अपने स्वरूप को,
५ दो इन्द्रियादिक, ६ नाश किये

ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी ।
भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो करिमरजी[1] ॥१५॥

४ चतुर्थ–स्तवनकर्म ।

नमौं रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको ।
संभव भवदुखहरण करण अभिनन्द शर्मको[2] ॥
सुमति सुमतिदातार तार[3] भवसिंधु पार कर ।
पद्मप्रभ पद्माभ[4] भानि[5] भवभीति प्रीति धर ॥१६॥

१ अपनी इच्छासे, २ सुख, ३ पार करो
४ कमलके समान, ५ नाश करो

श्री सुपार्श्व कृतपाश[1] नाशे भव जास शुद्ध कर ।
श्री चन्द्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥
पुष्पदन्त दमि[2] दोष कोश[3] भविपोश[4] रोषहर[5] ।
शीतल शीतल करण हरण भवताप दोषहर ॥१७॥
श्रेयरूप[6] जिनश्रेय ध्येय नित सेय[7] भव्यजन ।
वासुपूज्य शतपूज्य[8] वासवादिक भवभयहरन ॥

१ बंधन २ नाशकरो ३ समूह ४ भव्यजनों को प्रसन्नकरने वाले, ५ कषायों का नाश ६ कल्याण ७ सेवन करते ८ सौ इन्द्रों से पूजनीक

बिमल विमलमति[१] देन अंतगत[२] है अनंत जिन ।
धर्मशर्म[३]शिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन[४] ।१८।
कुंथु कुंथुमुख[५] जीवपाल अरनाथ जालहर[६] ।
मल्लि मल्लसम[७] मोहमल्ल[८]मारन प्रचार धर ॥
मुनिसुव्रत व्रतकारण नमत सुरसंघहि नमि जिन ।
नेमिनाथ जिन नेमि[९] धर्मरथमाहिं ज्ञानधन ॥१९॥

---

१ निर्मल बुद्धि २ मोक्षको प्राप्त ३ सुख, मोक्षको देने वाले ४ करने वाले ५ कुंथु नामके जीवको आदि लेकर ६ संसार को नाश करो ७ सुभट ८ मोहनीय कर्म ९ धर्म रूपी रथकी धुरी

पार्श्वनाथ जिन पार्श्व[1]उपलसम मोक्षरमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं[2] भवदुःख कर्मकृत ॥
या विधि मैं जिनसंघरूप[3] चउवीस संख्यधर ।
स्तवूं[4] नमूं हूं बार बार वंदूं शिवसुखकर ॥२०॥

५ पंचम वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर[5] धीर[6] महावीर[7] सु सनमति ।

---

१ पारस पत्थर २ नाश करूं ३ तीर्थंकर ४ स्तोत्र करता हूं ५-६-७ महावीर स्वामी के नाम

वर्द्धमान[1] अतिवीर[2] वंदिहूं मनवचतनकृत ॥
त्रिशल तनुज[3] महेश धीश विद्यापति[4] वंदू ।
वंदों नितप्रति कनकरूप[5] तनु[6] पापनिकंद ॥२१॥
सिद्धारथ[7] नृपनंदद्वंददुख दोष मिटावन ।
दुरितदवानल[8] ज्वलितज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर[9] करि जन्म जगतजिय आनंदकारन ।

१-२ महावीरप्रसादके नाम ३ त्रिशला माताके पुत्र
४ केवल ज्ञानी ५ सुवर्ण ६ शरीर ७ पिताका नाम
८ पापरूपी अग्नि, ९ जन्म स्थान

वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुखटारन ॥२२॥

सप्तहस्त[1] तनु तुंग भंगकृत[2] जन्ममरण भय।

बालब्रह्ममय[3] ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥

दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन।

आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदौं मन वच तन।२३।

जाके वंदनथकी दोप दुखदूरिहि जावैं।

जाके वंदनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवैं॥

जाके वंदनथकी वन्द्य होवैं सुरगन के।

१ शरीर की ऊंचाई, सात हाथ २ नाशक ३ बाल ब्रह्मचारी

ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग[१] तिनके ॥२४॥
सामायिक षट्कर्म मांहि वन्दन यह पंचम ।
वन्दों वीरजिनेन्द्र इन्द्रशतवन्द्य[२] वन्द्य मम ॥
जन्ममरणभय हरो करो अघशांति शांतमय ।
मैं अघकोश[३] सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥२५॥

६ छठा कायोत्सर्ग कर्म ।

कायोत्सर्गविधान करूं अंतिम सुखदाई ।
कायत्यजनमय[४] होय काय सबको दुखदाई ॥

१ चरण कमल २ सौ इन्द्रों से पूज्य ३ पाप समूह
४ त्याग

पूर्व[1] दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं।
जिनगृहवंदन[1] करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥२६॥
शिरोनती[2] मैं करूं नमूं मस्तककर धरिकैं।
आवर्तादिक[3] क्रिया करूं मन वच मद हरिकैं॥
तीनलोक जिनभवनमांहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप[4] मांहीं वन्दौं जिमि ॥२७॥
आठ[5] कोड़ि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं।

---

१ चैत्यालय २-३ सामायिक विधि में कीजाने वाली क्रियाविशेष ४ अढाई द्वीप ५ संख्या (८५६९७४८१)

च्यारि शतक परि असी एक जिनमन्दिर जानूं ॥
व्यंतर ज्योतिषिमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर ।
ते सब वन्दन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥२८॥
सामायिकसम नाहिं और कोउ वैर मिटायक ।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री–दायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणस्थानक ।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक २६

जे भवि आतमकाज–करण[1] उद्यम के धारी ।
ते सब काज विहाय[2] करो सामायिक सारी ॥

१ आत्मोन्नति के लिये २ छोड़ कर

राग द्वेष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय[१] जाय तातैं कीज्यो अब ३०

❀ आलोचना पाठ ❀

॥ दोहा ॥

वन्दों पांचों परमगुरू[२], चौबीसों जिनराज[३]।
करूं शुद्ध आलोचना[४], शुद्ध करन के काज ॥१॥

---

१ नष्ट होजाय २ पंचपरमेष्ठी—अरहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, एवं साधु ३ तीर्थङ्कर ४ क्षमा कराने के लिये अपने दोषों को भगवान के सामने प्रकट करना,

* चाल छन्द *

सुनिये जिन अर्ज हमारी, हम दोष किये अति भारी। तिनकी अब निवृति[१]काज, तुम शरन लही जिनराज ॥२॥ इक[२] वे[३] ते चउ इन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा। तिनकी नहीं करुणा[४]धारी, निरदय ह्वै[५] घात[६] विचारी ॥३॥

समरंभ[७] समारंभ[८] आरंभ[९] मन वच तन कीने

---

१ छुटकारा पाने के लिये, २ दो, ३ तीन, ४ दया, ५ होकर, ६ हिंसा ७ किसी काम के करने का इरादा करना, ८ किसी काम के करने का सामान इकट्ठा, करना ९ किसी काम को शुरू करना,

१ २ ३ ४
प्रारंभ। कृत कारित मोदन करिके क्रोधादि चतुष्टय

५ ६
धरिके ॥४॥ शत आठ जु इन भेदन में अघ कीने

७ ८
परछेदन तें। तिनकी कहुं कोलों कहानी; तुम
जानत केवल ज्ञानी ॥५॥ विपरीत एकांत विनय

९
के संशय अज्ञान कुनयके। वस होय घोर अघ

१ खुद करना, २ दूसरे से कराना, ३ दूसरे को देख कर खुश होना, ४ क्रोध, मान, माया, लोभ, ५ एकसौ आठ, ६ पाप ७ दूसरे को दुःख देने से, ८ कब तक, ९ विपरीत, एकान्त, विनय, संशय और अज्ञान ये पांच मिथ्यात्व होते हैं

कीने वचतैं[1] नहिं जात कहीने ॥६॥ कुगुरुन की

सेवा कीनी केवल, अदया[2] कर भीनी। या विधि

मिथ्यात बढ़ायो[3], चहुं गति में दोष उपायो ॥७॥

हिंसा पुनि[4] झूठ जु चोरी, परवनिता[5] सों दृग[6] जोरी।

आरंभ परिग्रह भीने पुन पाप[7] जु याविधि[8] कीने ॥८॥

सपरस[9] रसना घ्रानन को, दृग[10] कान विषयसेवन

---

१ बचन से, २ दया का न होना, ३ भरी हुई, ४ फिर, ५ परस्त्री से, ६ आंख लड़ाना' ७ पांच ८ इसप्रकार, ९ स्पर्श, १० आंख

को। बहु काम किये मन माने, कछु न्याय[1] अन्याय[2] न जाने ॥९॥ फल पंच उदंबर[3] खाये, मधु[4] मांस मद्य[5] चित चाये। नहीं अष्ट[6] मूलगुण[7] धारे, सेये कुविसन[8] दुखकारे ॥१०॥

दुइवीस[9] अभख[10] जिन खाये, सों भी निश[11] दिन

१ योग्य २ अयोग्य ३ पीपल, बड़, गूलर, कठूमर (अञ्जीर) और पाकर, ४ शहद, ५ शराब ६ आठ, ७ वे गुण जिनके बिना श्रावक नहीं हो सकता, ८ व्यसन दूर्गुण, जुआ खेलना, मांस खाना शराब पीना, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, शिकार खेलना चोरी करना।

९ बाईस, १० अभक्ष्य—न खाने योग्य, ११ रात,

भुंजाये[१] । कुछ भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों कर उदर[२] भरायो ॥ ११ ॥ अंनतानुबन्धी[३] सो जाने, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्याने । संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोड़श[४] सुनिये ॥१२॥ परिहास[५] अरति[६] रति[७] शोग[८], भय ग्लानि[९] तिवेद[१०]

१ खाये, २ पेट, ३ अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ, और अप्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, और प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोध मान माया, लोभ, और संज्वलन सम्बन्धी क्रोध, मान, माया लोभ ये १६ कषायें होती, हैं ४ सोलह ५ हंसना, ६ द्वेष, ७ प्रीति, ८ शोक, ९ घिन करना, १० तीनों वेद स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुन्सक वेद,

संजोग। पनबीस[1] जु भेद भये इम[2], इनके वश पाप किये हम ॥१६॥ निद्रा वश शयन कराया, सुपनन मधि दोष लगाया। फिर जागि विषयवन[3] धायो[4], नानाविधि विषफल खायो ॥१४॥ आहार निहार[5] विहरा[6], इन में नहिं जतन विचारा। बिन देखे धरा उठाया बिन शोधा भोजन खाया ॥१५॥ तबही परमाद सतायो, बहु विधि विकलप उपजायो।

१ पच्चीस, २ इस प्रकार, ३ विषयरूपी वन में, ४ दौड़ा, ५ शौच जाना वा पेशाब करना ६ इधर उधर फिरना,

कछु सुधि बुधि नाहिं रही है। मिथ्यामति[1] छाय गयो है॥१६॥ मर्यादा[2] तुम ढिग[3] लीनी, ताहू में दोष जु कीनी। भिन भिन[4] अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषय सब पइये १७ मैं हा हा दुठ[5] अपराधी, त्रस जीवन को जु बिराधी[6]। थावर की जतन न कीनी, उरमें[7] करुना नहिं लीनी॥१८॥ पृथिवी

१ खोटी बुद्धि, २ ब्रत नियम, ३ तुम्हारे सामने, ४ अलग, ५ दुष्ट, ६ हिंसा करने वाला, ७ चित्तमें

बहु खोद कराई, महलादिक जागा[1] चिनाई।
बिन गाल्यो[2] पुनि जल ढोल्यो[3] पंखा ते पवन
बिलोल्यो[4] ॥ १९ ॥ हा ! हा ! मैं अदयाचारी[5]
बहु हरित जु काय विदारी[6]।
या मधि[7] जीवन के खंदा[8], हम खाये धरि अनन्दा
॥२०॥ हा ! हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अग्नि
जलाई। ता मधि जीव जे आये तेहू परलोक[9]

१ जगह, २ बिना छना हुआ, ३ डाला, ४ हिलाई,
५ दया नहीं करने वाला, ६ नष्टकी, ७ इसमें
८ स्कन्ध, समूह ९ मर गये,

सिधाये ॥२१॥ बींधो[1] अन[2] राति पिसायो, ईंधन बिन शोध जलायो। झारू ले जगा बुहारी, चिंटि[3] आदिक जीव बिदारी ॥२२॥ जल छानि जिवानी[4]

१ घुना हुआ, २ अनाज, ३ चिऊंटी, ४ पानी छान लेने पर छन्ने में जो जीव रह जाते हैं, यदि किसी वर्तन पर वह छन्ना उलट कर रख दें और ऊपर से छना हुआ पानी डालदें, तो ये जीव उस पानी के साथ उस वर्तन में आजाते हैं, उन्हीं जीवों से भरे हुए पानी को जिवानी कहते हैं, पानी दोहरे छन्ने में बारीक धार से छानना चाहिये और छने हुए पानी से जिवानी को उसी जगह जहांसे पानी लिया है धोकर डाल देना चाहिये ।

कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी। नहिं जल थानक पहुंचाई, किरिया[1] बिन पाप उपाई ॥२३॥ जल मलमोरिन[2] गिरवायो, क्रमिकुल[3] बहु घात करायो। नदियन बिच चीर[4] धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥ अन्नादिक[5] शोध कराई, तामध्य जीव निसराई[6]। तिनको नहिं जतन करायो,

१ क्रिया, यत्न, २ मोरियों में ३ लट, कीड़ी, आदि जीवों के समूह, ४ कपड़े ५ अनाज वगैरह बिनवाया ६ निकलवाये,

गलियारे धूप डरा रो ॥२५॥ पुनि द्रव्य[1] कमावन
काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै[2]।
कीये अघ तिसनावश[3] भारी करुना नहीं रंच[4]
विचारी ॥२६॥ इत्यादिक पाप अनन्ता[5], हम कीने
श्री भगवन्ता। संतत[6] चिरकाल[7] उपाई; बानीतैं कही
न जाई ॥२७॥ ताको जु उदै अब आयो।

---

१ रुपये, २ हिंसा के साज सामान, ३ तृष्णा
अर्थात् लोभ कषाय के वश, ४ जरा भी ५ बहुत
६ लगातार ७ बहुत काल तक,

नानाविधि[1] मांहि सतायो[2]। फल भुंजत[3] जिय दुख पावे, वच ते कैसे करि गावे ॥ २८ ॥ तुम जानत केवलज्ञानी[4] दुख दूर करो शिवथानी[5]। हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद[6] सही है ॥२६॥ इन गांवपति[7] जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे। तुम तीन भुवन[8] के स्वामी, दुख मेटो अंतरजामी

१ अनेक प्रकार, २ दुख दिया, ३ भोगते हुए, ४ संसार के समस्त पदार्थों को जानने वाले, ५ सिद्ध, ६ कीर्ति, ७ एक गांव का स्वामी, ८ तीनों लोकों के,

॥३०॥ द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो। अञ्जन से किये अकामी[१], दुख मेटो अन्तरजामी[२] ॥३१॥ मेरे अवगुण[३] न चितारो[४] प्रभु अपनों विरद निहारो[५]। सब दोष रहित कर स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥३२॥ इन्द्रादिक पद नहिं चाहूं विषयन में नहीं लुभाऊं। रागादिक[६] दोष हरीजे, परमातम[७] निज पद दीजे ३३

१ इच्छा रहित, २ हृदय की बातजानने वाले, ३ दोष, ४ विचारो, ५ देखो, ६ द्वेष वगैरह दोष, ७ सिद्धपद।

॥ दोहा ॥

दोष रहित जिन देवजी, निजपद दीजे मोय ।
सब जीवन के सुख बढे आनन्द मंगल होय ३४
अनुभव माणिक परखी जौहरि आप जिनन्द ।
ये ही वर मोहि दिजिये चरन शरन आनन्द ३५

बारह भावना भूधर दास कृत—

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी वार ॥१॥
दल बल देई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती विरियां जीवको, कोईन राखन हार ॥२॥
दाम विना निरधन दुखी, तृष्णा वश धनवान ।
कहूं न सुख संसार में; सब जग देख्यो छान ३

आप अकेला अवतरै, मरै अकेला सोय ।
यों कबहूँ इस जीव को, साथी सगान कोय ॥४॥
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनों कोय ।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥
दिपै चाम चादर मंढी हाड पींजरा देह ।
भीतर यासम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥६॥

सोरठा ।

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमे सदा ।
कर्म चोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥७॥
सत गुर देंय जगाय, मोह नींद जब उपसमें ।
तब कछु बनै उपाय, कर्म चोर आवत रुकै ॥८॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर ।
या विध विन निकसै नहीं, पैठे पूरव चोर ॥९॥

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्री-विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ॥
ता मैं जीव अनादि तैं, भरमत हैं विन ज्ञान ॥११॥

जाचे सुरतरु देय सुख, चितत चिंता रैन ॥
विन जाचें विन चितये धर्म सकल सुखदैन १२

धन कन कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥१३॥

卐 ॐ 卐

वैराग्य भावना वज्र जंघ की

॥ दोहा ॥

बीज राख फल भोगवै ज्यों किसान जग मांहि।
त्यों चक्री नृप सुख करै धर्म विसारै नाहिं॥१॥

योगीरासा व नरेन्द्र छन्द

इह विधि राज करै नर नायक भोगै पुण्य विशालो
सुख सागर में रमत निरन्तर जात न जान्यो कालो
एक दिवस शुभ कर्म संजोगे क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखे सिरी गुरु के पद पंकज लोचन अलि आनंदे

तीन प्रदक्षिणा दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी
साधुसमीप विनय कर बैठ्यो चरनन में दिठि दीनी
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागे ।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे
मुनीसूरजकथनी किरणावलि लगत भरम बुधिभागी
भव तन भोग स्वरुप विचार्यो परम धरम अनुरागी
इह संसार महा वन भीतर भ्रमते ओरन आवै ।
जामन मरन जरा सों दाझे जीव महा दुख पावै ४
कबहूं जाय नरक थिति भुंजै छेदन भेदन भारी ।
कबहूं पशु पर जाय धरै तहं वध बन्धन भयकारी
सुरगति में परसम्पति देखे राग उदय दुख होई
मानुष्ययोनि अनेक विपतिमय सर्वसुखी नहीं कोई

कोई इष्ट वियोगी विलखे कोई अनिष्ट संजोगी।
कोई दीन दरिद्री विगुचे कोई तनके रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहिर दीखै किसही उर दुचिताई
कोई पुत्र विना नित झूरै होइ मरै तब रोवै।
खोटी संतति सो दुख उपजै क्यों प्राणी सुख सोवै
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नहींसदा सुख साता
यह जग वास जथारथ देखे सबही दिखैं दुखदाता
जो संसार विषै सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे
काहे को शिव साधन करते संजम सों अनुरागे
देह अपावन अथिर घिनावनि यामें सार न कोई
सागर के जल से शुचि कीजे तोभी शुद्ध न होई

सातकु धातु भरी मल मूतर चर्म लपेटी सोहे ॥
अंतर देखत या सम जगमैं और आपवन को है
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर नाम लिये घिनआवैं
व्याधि उपाधि अनेकजहां तहं कौनसुधी सुखपावै
पोषत तो दुख दोष करै अति सोखत सुखउपजावै
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढावै ॥
राघन योग स्वरूप न याको विरचन जोग सहीहै
यह तनपाय महा तप कीजे या में सार यही है
भोग बुरे भव रोग बढावैं वैरी है जग जी के।
बेरस होंय विपाक समय अति सेवत लागे नीके
वज्र अगिनि विषसे विषधरसे ये अधिके दुखदाई
धर्म रतन के चोर चपल अति दुर्गति पंथ सहाई

मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जानै
ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कंचन मानै
ज्यों २ भोग संयोग मनोहर मनवांछित जन पावै
तृष्णा नागिन ज्यों त्यों डंकै लहर जहर की आवै
मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे।
तोभी तनक भए नहि पूरन भोग मनोरथ मेरे॥
राज समाज महा अघ कारण वैर बढ़ावन हारा।
वेश्या सम लछमी अति चंचल याका कौनपत्यारा
मोह महा रिपु वैर विचारयो जग जिय संकट डारे
घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन जन रखवारे
सम्यक दर्शन ज्ञान चरन तप ये जियके हितकारी
येही सार असार और सब यह चक्री चित धारी

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि अरु छोड़े संग साथी
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरण तृण सम त्यागी
नीति विचार नियोगी सुतकों राज दियो बड़ भागी
होय निशल्प अनेक नृपति संग भूषण वसन उतारे
श्रीगुरु चरन धरी जिन मुद्रा पंच महाव्रत धारे
धनि यहसमझ सुबुद्धि जगोत्तम धनियह धीरजधारी
ऐसी संपति छोड़ बसे बन तिन पद धोक हमारी

॥ दोहा ॥

परि ग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।
निज स्वभाव में थिर भये, बज्रनाभि निरग्रंथ १३

निर्वाणकाण्ड

॥ दोहा ॥

वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिरनाय ।
कहूँ कांड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ॥१॥

❀ चौपाई १५ मात्रा ❀

अष्टापद आदीसुर स्वामी । वासुपूज्य चंपापुरि नामि । नेमिनाथ स्वामी गिरनार । वन्दौं भाव भगति उरधार ॥ २ ॥ चरम तीर्थंकर चर्म शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर बीस । भाव सहित वन्दौं निशदीस ॥३॥ वरदत्तरायरु इन्द मुनीन्द । सायरदत्त आदिगुण

बृन्द ॥ नगरतारवर मुनि उठिकोडि बन्दौं भाव सहित कर जोड़ि ॥ ४ ॥ श्रीगिरिनारशिखर विख्यात । कोड़ि वहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न कुमार द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं तसुपाय ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके सुत द्वै वीर । लाड़ नरिन्द आदि गुण धीर ॥ पांच कोड़ी मुनि मुक्ति मझार । पावागिरि वन्दौं निरधार ॥ ॥ ६ ॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आट कोड़ि मुनि मुकति पयान । श्रीशत्रुंजय गिरिके सीस । भाव सहित बन्दौं निशदीस ॥ ७ ॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये । आठ कोड़ि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥ ८ ॥ राम हनू सुग्रीव सुडील ।

गवयगवाख्य नील महानील ॥ कोड़ि निन्याणवै मुक्ति पयान । तुङ्गीगिरि वन्दौं धरि ध्यान ॥६॥ नङ्ग अनङ्ग कुमार सुजान । पांच कोड़ि अरू अर्ध प्रमान ॥ मुक्ति गये सो नागिरशीश । ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥ रावणके सुत आदि कुमार । मुक्ति गये रेवातट सार । कोड़ि पंच अरु लाख पचास ते वन्दौं धरि परम हुलास ॥११॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिम दिशा देह जहं छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठ कोड़ि वन्दौं भवपार ॥१२॥ वड़वानी वड़नगर सूचङ्ग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतङ्ग ॥ इन्द्रजीत अरु कुम्भजु कर्ण । ते वन्दौं भवसागर तर्ण ॥१३॥ सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावागिरिवर

शिखर मझार ॥ चेलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥१४॥ फलहोड़ी बड़गाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति गये वंदौं नित तहां ॥१५॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्ति मझार । ते वंदौ नित सुरत संभार ॥१६॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढ़े तीन कोटि मुनिराय । तिनके चरण नमूं चितलाय ॥१७॥ वंस स्थल बनके ढिग होय । पश्चिमदिशा कुन्थु-गिरि सोय ॥ कुलभूषण देशभूषण नाम । तिनके चरणनी करूं प्रणाम ॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला

मुनि कोटि प्रमान । वंदन करूं जोर जुगपान ॥१६॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनन्द ॥ रेसंदीगिरिनयनानन्द ॥ वरदत्तादि पञ्च ऋषिराज । ते बन्दौं नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीनलोकके तीरथ जहां । नितप्रति बन्दन कीजे तहां ॥ मनवचकाय सहितसिरनाय । बन्दन करहिं भविक गुण गाय ॥२१॥ संवत सतरह सौ इकताल । आश्विनसुदि दशमी सुविशाल ॥ "भैया" बन्दन करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥२२॥

॥ इति ॥

—

मेरी भावना

[ले० पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार]

(१)

जिसने राग–द्वेष कामादिक
जीते सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्ग का
निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर; जिन, हरि, हर, ब्रह्मा
या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति–भावसे प्रेरित हो यह
चित्त उसीमें लीन रहो॥

(२)

विषयोंकी आशा नहिं जिनके,
साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित साधन में जो
निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या,
बिना खेद जो करते हैं॥
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके
दुख-समूहको हरते हैं॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका
ध्यान उन्हींका नित्य रहे,

उन ही जैसी चर्यामें यह
चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊं किसी जीवको,
झूठ कभी नहिं कहा करूं ।
पर-धन-वनिता* पर न लुभाऊं
संतोषामृत पिया करूं ॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूं,
नहीं किसी पर क्रोध करूं;
देख दूसरोंकी बढ़तीको
कभी न ईर्षा-भाव धरूं ॥

* स्त्रियां 'वनिता' की जगह 'भर्ता' पढ़ें ।

रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल-सत्य-व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवनमें
औरोंका उपकार करूं ॥

(५)

मैत्रीभाव जगतमें मेरा
सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे
उरसे करुणा स्रोत बहे ।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग रतों पर
क्षोभ नहीं मुझ को आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर
ऐसी परिणति हो जावे ॥

(६)

गुणीजनोंको देख हृदयमें
मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा
करके यह मन सुख पावे ॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं,
द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित
दृष्टि न दोषों पर जावे ॥

(७)

कोई बुरा कहे या अच्छा
लक्ष्मी आवे या जावे,

लाखों वर्षों तक जीऊं या
मृत्यु आज ही आजावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्गसे मेरा
कभी न पद डिगने पावे ॥

(८)

होकर सुखमेंमग्न न फूले,
दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक-
अटवीसे नहिं भय खावे ।
रहे अडोल- अकंप निरन्तर,
यह मन, दृढ़तर बन जावे,

इष्टवियोग—अनिष्टयोग में
सहनशीलता दिखलावे ॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगत के
कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग
नित्य नये मंगल गावे ॥

घर घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना,
मनुज-जन्म-फल सब पावे ॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहीं जगमें
वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी
न्याय प्रजाका किया करे।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले,
प्रजा शांतिसे जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में
फैल सर्वहित किया करे ॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जगमें,
मोह दूर पर रहा करे।

अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं
कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से
देशोन्नति-रत रहा करें,
वस्तु-स्वरुप विचार खुशीसे,
सब दुख-संकट सहा करें ॥

****
॥ तथास्तु ॥
****

आत्म-दर्शन की भावना

मेरे जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य अपने आपको जानना है, अपने आत्मा का अनुभव करना है। मैं जानता हूं कि मेरे आत्मा में अपरिमित बल है, फिर भी मैं अशक्त और दुर्बल होकर अपने उद्धार के लिए दुसरों की सहायता का मुंह ताक रहा हूं। गङ्गा के बीच में बैठा हुआ भी प्यास के मारे मरा जारहा हूँ। मेरा आत्मा अमूल्य रत्नों का भंडार है फिर भी मैं भिखारी बन कर दर-दर ठोकरें खा रहा हूँ। आनन्द के सागर में पड़ा हुआ आनन्द से वंचित हो रहा हूँ। दुखी और संतप्त

होरहा हूं। क्यों कि मैं असत् मैं ग्रस्त हूं। काम क्रोध, राग-द्वेष के बन्धन में जकड़ा हुआ हूं और आत्म-तेज और आत्म-वीर्य को मैं खो बैठा हूँ। विषय-वासना और इन्द्रियों के स्वछन्द भोगो में लिप्त होकर अपने रूप और स्वरूप को भूला हुआ हूं। मैं स्वयं अपने रूप से अनभिज्ञ हूं। इसलिए अपने आत्म बल को नष्ट कर रहा हूँ।

मुझ में अब विवेक ज्ञान जागृत हो गया है। मैं आज से दृढ़ विश्वास करता हूं कि मन वाणी और कार्य से सत्य को ही प्रगट करूंगा। अब मैं पाशविक वृत्तियों के आधीन नही हो सकता। मेरे हृदय और मनमें कोई

विकार डेरा नहीं जमा सकता। मैं स्वार्थ पूर्ण अहंकार से ऊपर उठ गया हूँ। मेरे अन्तः करण का सब मैल निकल गया है। मैं अपने भीतर पवित्रों का भी पवित्र, निष्कलंक और निष्पाप स्वरूप आत्माका अनुभव कर रहा हूं। मैंने सत्य ब्रह्मचर्य और संयम के तप से शरीर मन और आत्मा को परिपक्व करलिया है। मेरे आज्ञा के विना मेरे मन, बुद्धि, इन्द्रिय; और प्राण दौड़ भाग नही कर सकते। संसारके पदार्थों के पीछे अब मैं पागल नहीं बनता। बाह्य पदार्थ मेरे आत्मा पर राज्य नहीं कर सकते।

खाते-पीते, उठते- बैठते, चलते-फिरते,

सोते-जागते मैं अपने आत्माके दर्शन के लिए व्याकुल होरहाहूं। मुझे निश्चय होगया है कि अनात्म वस्तुएं मुझे सुख शान्ति नहीं दे सकती मोह और शोक से मुझे पार नहीं कर सकती। मैं इनसे मुख मोड़ कर आत्मा के प्रति अभिमुख हो रहा हूं अपनी आत्मा को जाग्रत कर रहा हूं। आत्मा में क्रीड़ा कर रहा हूं। आत्मा-राम हो रहा हूं। आत्म-चिन्तन में मग्न हो कर आत्मानन्द का अनुभव कर रहा हूं। आत्मा का साक्षात्कार कर रहा हूं और उसके दर्शन में अपने अहं को डुबा देता हूं। अब सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश जगमगा रहा है। शोक मोह और अंधकार अब वहां कैसे ठहर सकते हैं?

प्रकाश की धाराएं सर्वत्र बह रही हैं। कैसे निर्मल दिव्य सुख का अनुभव हो रहा है !

(कल्प वृक्ष)

वीर वाणी

मैं भली भांति जानता हूं कि मैंने हजारों वार कषाय के वश होकर निरपराध प्राणियों को सताया है प्रमाद के वश उन के प्राण हरण किये हैं। स्वार्थ वश उनको कष्ट पहुंचाया है। मिथ्या अभिमान के वशी भूत होकर उन का अपमान किया हैं, और अहंकार में आकर उन का प्रेम ठुकराया है। मैं सच्चे हृदय से कहता हूं कि मेरे जीवनका उद्देश्य अब तक निरर्थक रहा है। मार्ग की कठिनाइयों और प्रलोभनोंने मुझे पग

पग पग भ्रष्ट किया है। मैं सदा प्रतिष्ठा का लोभी ही रहा हूँ। मैंने सब को धोका दिया है और गुम राह किया है मैंने स्वयं मोहांध हो कर भी छल से औरों को वैराग्य का उपदेश दिया है स्वयं इन्द्रियों का दास होते हुये औरों को मिथ्यारूपेण इन्द्रिय विजय का पाठ पढाया है। मैंने अपने कटु वचनों से अपने भाइयों के कलेजे को दुखाया है और अभिमान से यह कहा है कि मैं सत्यमार्गी हूं? निर्लोभी हूं? निःस्वार्थी हूं समदर्शी हूं? शुद्ध हृदय हूं? परन्तु मैंने नहीं विचारा कि मैं निष्पक्ष नहीं अहंकारी हूं, निर्लोभी नहीं स्वार्थी हूं, शुद्ध हृदय नहीं मलीन चित्त हूं मैंने किसी के साथ राग और किसी के साथ

द्वेष किया किसीके नफरत और किसी के साथ क्रोध किया। यह सब कुछ इसलिये किया कि आंख पर स्वार्थ, मान और अभिमान की पट्टी बंधी हुई थी दूसरों का सुख मेरी आंखोंमें खटकता था, बस मैंने जो कुछ किया वो ढोंग था धोका और मकारी थी पाप था और नीचता थी भगवान में इन पापों और अपराधोंसे अति दुखी हूं। मेरे अन्तः करण की अब यह भावना है कि मेरा किसी प्राणी से द्वेष नहो बल्कि मेरी आत्मा में इस प्रकार का बल और साहस उत्पन्न हो जिससे मैं द्वेष करने वालों की भली भांति रक्षा कर सकूं और क्रोध को पास भी न फटकने दूं। हे भगवान् अहिंसा और सत्य का भाव मेरी आ

रग में इस प्रकार समाजावे कि मैं प्राणी मात्र के साथ सहानुभूति प्रगट कर सकूं स्वयं प्रेम मूर्ति बन सकूं और अन्य जीवों को प्रेम मूर्ति बनाने में समर्थ हो जाऊं । हे परमात्मन् ! निंदा और स्तुति समयमें मैं अपने दिल को कलुषित न होने दूं। मेरे अंदर इतनी सहन शक्ति हो जिससे निंदा स्तुति-कर्ताओं पर सदा काल सम दृष्टि रक्खूं निंदा करने वाले पर घृणा और स्तुति करने वाले पर प्रसन्नता प्रगट न करूं हे वीतराग प्रभो भयंकर से भयंकर कष्टों का भी सामना करना पड़े तो भी मैं अपनी दृढ़ता से विचलित न हो कर चरित्र हीन और झूठा न होऊं, मेरी श्रद्धा भक्ति तथा प्रेम में किसी प्रकार की कमी न हो

क्यों कि इससे ही मैं संसार सागर से पार हो सकता हूं। हे भगवान में नित्य हिंसा झूठ चोरी मैथुन और परिग्रह से रहित होकर सदा परोपकार में लगा रहूं और जो सेवा जिस समय मेरे हिस्से में आवे उसमें लव लीन रहूं किसी बात की हिंच किचाहट न करूं। जीव मात्र की सेवा ही अपना धर्म समझूं जहां मेरे ध्येय की रचा में बाधा हो अथवा उसके प्रचार में न्यूनता आवे वहां उसको दूर करने में समर्थ होऊं तथा कभी कर्तव्य पथसे न डिगूं। हे सर्वज्ञ मैं प्रानी मात्र से हित मित प्रिय वचन बोलूं। भय को, जो कि आत्मा का शत्रु है कभी भी पास तक न फटकने दूं आत्म ज्ञान के अनुसंधान में लवलीन रहूं।

हे भगवन इन आदि अनेक शुभ भावनाओं में हमेशा मेरी प्रीति बनी रहे यहीं भावना है ।

॥ भजन ॥ १

एक योगी अशन बनावे ॥ टेक ॥

ज्ञान सुधारस जल भरिलावे; चूल्हा शील बनावे कर्म काष्ठ को चुग चुग वाले, ध्यान अग्नि प्रज्व लावे ॥ एक ॥ अनुभवभाजन निज गुण तंदुल समता क्षीर पिलावे ॥ सोऽहं मिष्ट निसंकित व्यंजन, समकित छौंक लगावे ॥ एक ॥ स्याद्वाद सत भंग मसाले, गिनती पार न पावे । निश्चय नय का चमाचा फेरे, विरत भावना भावे ॥एक॥ आप पकावे आपही खावे, खावत नहीं अघावे ।

तदपि मुकति पद पंकज सेवे, नयनानन्द सिर नावे ॥ एक ॥

॥ भजन ॥ २

करो मिल वन्दे वीरम् गान ।
आदि अजित संभव अभिनन्दन सुमति नाथ भगवान, पद्म सुपार्श्व चंदा प्रभु स्वामी, चमकत चन्द्र समान ॥ करो मिल० ॥ १ ॥ पुष्प दन्त शीतल जग नायक, तारक सकल जहान । श्री श्रेयांस श्रेय करें नित, दें हमें बुद्धि सत् ज्ञान ॥ करो मिल० ॥ २ ॥ वासुपूज्य विमल अनन्ते धर्म शान्ति की खानी । कुंथु कहो शिवरमणी क पाया पद निर्वाण ॥ करो मिल० ॥ ३ ॥ अरः मल्लिनाथ मुनि सुव्रत, व्रत जय तप की खानि

नमीं नेमि प्रभु पार्श्वनाथ जी, महावीर भगवान ॥ करो मिल० ॥ ४ ॥ ये चौवीसों तीर्थ जिनेश्वर इन का नित प्रति गान। सुख दायक शुभ शांति प्रदायक मेटत दुःख अज्ञान॥ करो मिल० ॥५॥

॥ भजन ॥ २

समय कब ऐसा मिलेगा भगवन् स्वरूप अपने को ध्याऊंगा मैं करम के बन्धन को तोड़ कर के जो मोक्ष पदवी को पाऊंगा मैं ॥ १ ॥ जितने हैं ये जगत के प्राणी, हो उनसे ऐसा ममत्व मेरा। मम आत्म सम हैं ये प्राणी मानों, प्रतीति ऐसी जनाऊंगा मैं ॥ २ ॥ अगर बनूं भी मैं चक्र वर्ती मिले जो पदवी भी इन्द्र पद की। तो लिप्त

उसमें तनिक न होकर कमल सरीखा हो जाऊंगा मैं ॥ ३ ॥ समझके पत्थर जो मेरे तनको हरिण खुजावेंगे खाज अपनी । समाधि किस दिन धरूंगा ऐसी जो तनकी सुध बुध भुलाऊंगा मैं ॥४॥ दुखोंके पर्वत पड़े जो आकर ये सर पै मेरे जो एक दम भी । जरा न व्याकुल मैं होऊं हर्गिज सदा सुदृढता ो लाऊंगा मैं ॥ ५ ॥ निजात्म शक्ति प्रकाश करके ये कर्म आठों विनाश करके हो शुद्ध निश्चल अनन्त सुख में चिदात्म शिवपद को पाऊंगा मैं ॥ ६ ॥

॥ भजन ॥ ३

भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शीलका, व्यवहार घरबार हो ॥१॥

धर्मका परचार हो अरु, देशका उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो
रोशनी से ज्ञान का, संसार में परकाश हो।
धर्म के आचार से, हिंसाका जगमे ह्रास हो ॥३॥
शान्ति और आनन्दका, हर एक घरमें वास हो
वीर वाणी पर सभी संसार का विश्वास हो।
रोग भय अरु शोक होवे दूर सब परमात्मा।
कर सके कल्याण 'ज्योति', सब जगत की आत्मा

॥ भजन ॥ ५

नाम जपन क्यों छोड़ दिया।
क्रोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया। झूठे जगमें दिल ललचाकर असल वतन क्यों छोड़ दिया। कौड़ी को तो खूब

संभाला लाल रतन क्यों छोड़ दिया ॥ जिहि सुमरन में अति सुख पावे; सो सुमिरन क्यों छोड़दिया। खालस इक भगवान भरोसे, तन मन धन क्यों न छोड़ दिया ॥

॥ भजन ॥ ६

घड़ि २ पल २ छिन २ निश दिन,

प्रभु जी का सुमिरन करले रे (टेक)

प्रभु सुमिरे तें पाप कटत है,

जनम मरण दुख हर ले रे ॥१॥

मन वच काय लगाय चरण चित,

ज्ञान हिये बिच धरले रे ॥ २ ॥ घ०

दौलत राम धर्म नौका चढि,

भव सागर सों तिरले रे ॥ ३ ॥ घ०

॥ भजन ॥ ७

आया नहि जाना तूने, कैसा ज्ञान धारी रे। टेक॥
देहाश्रित करि क्रिया आप को, माना शिव मग
चारी रे ॥ १ ॥ निज निवेद विन घोर परीषह
विफल कही जग सारी रे ॥ २ ॥ शिव चाहै तो
द्विविध कर्म ते, कर निज परिणति न्यारी रे ॥३॥
"दौलत" जिन निज भाव पिछान्यो, तिन भव
विपत विदारी रे ॥ ४ ॥

॥ भजन ॥ ८

हृदय के पट खोल रे तोहे राम मिलेंगे ॥ टेक ॥
याहीमें गङ्गा याहीमें जमुना, याही में दे तू झकोर

रे ॥ १ ॥ घट २ में तेरे राम बसे है, मुखसे गंदे बोल न बोल रे ॥ २ ॥ कहत "कबीर" सुनो रे साधो आसन से मत डोल रे ॥ ३ ॥

॥ भजन ॥ ८

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है। जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ॥ १ ॥ टुक नींद से आंखे खोल जरा, और अपने प्रभू से ध्यान लगा। यह प्रीत करन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है जो कल करना हो आज करले, जो आज करना हो अब करले। जब चिड़ियन ने चुग खेत लिया फिर पछताये क्या होवत है ॥ ३ ॥ नादान भुगत

करनी अपनी, ओ पापी ! पापमें चैन कहां।
जब पाप की गठरी सीस धरी, फिर सीस पकड़
क्यों रोवत है ॥ ४ ॥

॥ भजन ॥ ६

ऊधो कर्मन की गति न्यारी ॥ टेक ॥
सब नदियां मधुर जल भर रहियां सागर किस
विध खारी ॥ १ ॥ उज्वल पंख दिये बगुला को
कोयल किस गुण कारी ॥ २ ॥ सुन्दर नयन मृगा
को दीने बन बन फिरत उजारी ॥ ३ ॥ मूरख
मूरख राजे कीने पंडित फिरत भिखारी ॥ ४ ॥
सूर' प्रभू मिलने की आशा छिन छिन बीतत
भारी ॥ ५ ॥

॥ भजन ॥ १०

रखता नहीं तन की खबर अनहद बाजा बाजिया घट बीच मंडल बाजता बाहिर सुना तो क्या हुआ ॥ जोगी तो जंगम सेवड़ा कहुलाय कपड़े पहिरता उस रंग से महरम नहीं कपड़े रंगे तो क्या हुआ काजी किताबें खोलता नसीहत बतावें और को अपना अमल कीन्हा नहीं कामिल हुआ तो क्या हुआ ॥ पोथी का पत्रा बांचता घर घर कथा कहता फिरे। निज ब्रह्म को चीन्हा नहीं ब्राह्मण हुआ तो क्या हुआ। गांजा रु भांग हफीम है दारू सराबा पोशता। प्याला न पीया प्रेम का अमली हुआ तो क्या हुआ। शतरंज चोपर गंज फा बहु खेल खेले हैं सब। बाजीन

खेली प्रेम की ज्वारी हुआ तो क्या हुआ। भूदर बनाई विनती श्रोता सुनो सब कान दे। गुरुका वचन माना नहीं श्रोता हुआ तो क्या हुआ॥

वे हैं परम उपास्य मोह जिन जीत लिया॥काम-क्रोध मद लोभ पछाड़े, सुभट महा बलवान। माया कुटिल नीति नागनि हन, कियाआत्म संत्राण * मोह॥ ज्ञान ज्योतिसे मिथ्या तमका, जिनके हुआ विलोप।
राग द्वेषका मिटा उपद्रव रहा न भय अरु शोक इन्द्रिय विषय लालसा जिन की रही न कुछ अव-शेष॥ तृष्णा नदी सुखा दी सारी

धर असंग+ व्रत वेष ॥३॥

दुख उद्विग्न करें नहि जिनको

सुख न लुभावें चित्त ।

आत्मा रूप संतुष्ट, गिनें सम

निर्धन और सवित्त× ॥ ४ ॥

निन्दा-स्तुति सम लखें,

बनें जो निष्प्रमाद निष्पाप ।

साम्य भाव रस आस्वादन-

से मिटा हृदय संताप ॥ ५ ॥

+ परिग्रह रहित भेष ×धनवान,

अहंकार ममकार चक्रसे,
निकले जो घर धीर ।
निर्विकार—निर्वैर हुए,
पी विश्व प्रेमक नीर ॥६॥
साध आत्म हितजिन वीरोंने,
किया विश्व कल्याण
'युग मुमुक्षु' उनको नित ध्यावें,
छोड़ सकल अभिमान ७

॥ भजन ॥ १२

इतना तो करदो स्वामी जब प्राण तनसे निकले ।
होवे समाधि पूरी जब प्राण तन से निकलें ॥
माता पिता दी जितने हैं यह कुटुम्ब सारे ।

इन से ममत्त्व छूटे जब प्राण तन से निकले ॥
वैरी मेरे बहुत से होवेगें इस जगत में।
उनसे क्षमा करालूं जब प्राण तनसे निकले ॥
परिग्रहका जाल सिर पर फैला बहुत है मुझ पर।
उनसे ममत्व छूटे जब प्राण तनसे निकले ॥
दुष्ट करें दुख दिखावें या रोग मुझ को घेरें।
प्रभु का तब ध्यान होवे जब प्राण तनसे निकलें ॥
इच्छा क्षुधा तृषा की होवे जो इस घड़ी में ॥
उनको भी त्याग करदूं जब प्राण तनसे निकलें ॥
ऐ नाथ ! अरज करता विनती यह ध्यान दीजे।
होवें सफल मनोरथ जब प्राण तन से निकलें ॥

॥ भजन ॥ १२

जब हंस तेरे तनका कहीं उड़के जायगा;

ऐ दिल बतातो किससे तू नाता रखायगा ॥
ये भाई बंधु जो तुझे करते हैं आज प्यार ।
जब आन बनें कोई नहीं काम आयगा ॥
ये याद रख कि सब हैं तेरे जीते जी के यार ।
आखिर तू अकेला ही मगन दुख उठायेगा ॥
सब मिलके जलादेगें तुझे जाके आगमें ।
एक छिनके छिनमें तेरा पता भी न पायेगा ॥
कर घात आठ कर्मों का निज शत्रु जान कर ।
बे नाश किये इनके तू मुक्ति न पायेगा ॥
अवसर यही है जो तुझे करना है आज कर ।
फिर क्या करेगा काल जो मुंह बाके आयेगा ॥
ऐ न्यायमत उठ चेत क्यों मिथ्यात में पड़ा ।
जिन धर्म तेरे हाथ यह मुशकिल से आयेगा ॥

॥ भजन ॥ १४

बोल तू सब से मीठे बोल ॥
जरा जरा सी बातों में तू रस में विष मत घोल।
अपना सा दिल समझ सभी का मत तू बोल कुबोल
काक और कोयल की बोली अपने जी में तोल।
राग द्वेष और भेद भावकी लगी गांठको खोल॥
यही प्रेम की अमर रीती है विकल रत्न अनमोल॥

भक्तामर भाषा।

[स्वर्गीय पण्डित हेमराज जी कृत]
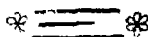
आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमो आदि अवतार॥१॥

❀ चौपाई ❀

सुरनत मुकुट रतन छबि करैं। अंतर पापतिमिर सब हरें॥ जिनपद वंदों मनवचकाय भवजलपतित उधरनसहाय॥ श्रुतिपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल तिम प्रभुकी बरनों गुनमाल विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। होय निलज थुति-मनसा कीन॥ जल प्रतिबिंब बुद्धको गहै। शशि मंडल बालक ही चहै॥ गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुर गुरु पावैं पार॥ प्रलयपवन उद्धत-जलजंतु। जलधि तिरैको भुज बलवंतु॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववश कछु नहिडरूं॥ ज्यों मृग निजसुत पालन हेत-मृगपतिसन्मुख जाय

अचेत ॥ मैं शठ सुधीहंसनको धाम । मुझ तुव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों पिक अंबकली परभाव । मधुऋतु मधुर करै आराव । तुमजस जपत जिन छिनमाहिं । जनमजनमके पाप नशाहिं ॥ ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत नील निशातमजाल ॥ तुम प्रभावतैं करहुं विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों जल कमलपत्रपै परै । मुक्ता फलकी दुति विस्तरै ॥ तुमगुनमहिमा हत दुख दोष । सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पापविनाशक है तुम नाम ॥ कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ नहिं अचंभ जो होहि तुरंत । तुमसे तुमगुण वरणत संत ॥ जो अधीनको आप समान । करै न सो निंदित धनवान ॥ इकटक जन तुमको अविलोय । और विषैं

रति करै न सोय ॥ को करि छीरजलधिजलपान। खारनीर पीवें मतिमान ॥ प्रभु तुम वीतराग गुणलीन। जिन परमाणु देह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमाणु । यातैं तुमसम रूप न आनु ॥ कहं तुमसुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयन मनहार ॥ कहां चंद्रमंडल सकलंक दिनमें ढाक-पत्रसम रंक ॥ पूरनचंद्र जोति छबिवंत। तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एकनाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरतको करै निवार ॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ। मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगाय न धीर ॥ धूमरहित बाती गत नेह। परकाशै त्रिभुवन घर येह ॥ बातगम्य नाहीं परचंड। अपर दीप

तुम वलो अखंड ॥ छिपहु न लुपहु राहुकी छांहि जगपरकाशक हो छिनमांहिं ॥ घन अनवर्त दाह विनिवार। रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ सदा उदित विदलितमममोह । विघटित मेघराहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरवचंद जगत-विकाशी जोति अमंद ॥ निशदिन शशिरविको नहि काम। तुममुखचंद हरै तम धाम ॥ जो स्वभावतै उपजै नाज, सजल मेघतैं कौनहु काज ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं । हरिहर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय। काचखंडपावै नहि सोय॥

॥ छंद नाराच ॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया, स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया। कछू

न तोहि देखके जहां तुही निशेखिया, मनोग चित्तचोर और भूलहू न देखिया ॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं न तो समान पुत्र और मात तैं प्रसूत हैं। दिशाधरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै, दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो, कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो। महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके, न और मोख मोखपंथ देव तोहि टालके ॥ अनंत नित्य चित्तके अगम्य रम्य आदि हो, असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥ महेश कामकेतु जोग ईश जोग ज्ञान हो, अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो। तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धके प्रमानतैं, तुही जिनेश

शं ो जगत्त्रियै विधानै । तुही विधाता है सही सुमोखपंथ धारनें, नरोत्तमो तुहीप्रसिद्ध अर्थके विचारनें ॥ नमो करूं जिनेश ताहि आपदा निवार हो, नमो करूं सुभूरि भूमिलोक के सिंगार हो। नमो करूं भवाब्धिनीर राशिशोखहेतु हो, नमो करूं महेश ताहि मोखपंथ देतु हो ॥

❀ चौपाई ❀

तुम जिन पूरनगुनगमन भरे । दोष गरबकरि तुम परिहरे ॥ और देवगन आश्रय पाय । सुपन न देखे तुम फिर आय ॥ तरुअशोकतर किरन उदार तुमतनशोभित है अधिकार ॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत दिनकर दिपे तिमिरनिहंत ॥ सिंहासन

मनिकिरनविचित्र । तापर कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतन शोभित किरनविथार । ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥ कुंदपुहुपसितचमर ढरंत । कनक वरन तुम तन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मलकांति । झरना झरें नीर उमगांति ॥ उंचे रहैं सूर दुति लोप । तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं । मोती झालरसों छवि लहैं ॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर चहुंदिश होय तुम्हारे धीर ॥ त्रिभुवन जन शिविसंगम करैं । मानों जय जय रव उच्चरैं ॥ मंदपवन गंधोदक वृष्टि ।विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट ॥ देव करें विकसित दल सार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥ तुमतन भामंडल जिनचंद । सब दुतिवंत करत हैं मन्द ॥ कोटि शंख रवितेज

छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशन हेत॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सबभाषागर्भित हितसाध॥

दोहा—विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुतिमिल चमकाहिं। तुमपद पदवी जहं धरैं, तहं सुर कमल रचाहिं॥ ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय। सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागन होय॥

षट्पद

मदअवलिप्तकपोल--मूल अलिकुलझंकारें। तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारें। काल वरन विकराल, कालवत सनमुख आवें।

ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै।
देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन।
विपतिरहित सम्पतिसहित, वरतै भक्त अदीन॥
अति मदमत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥ बांकी
दाढ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीम भया-
नकरूप देखि, जन थरहर डोलै। ऐसे मृगपति पग
तलें; जो नर आयो होय। शरन गये तुमचरनकी,
बाधा करै न सोय॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो
तास पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलै
निरंतर॥ जगत समस्त निगल्ल; भस्मकर हैगी
मानों। तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुंदिशा
उठानों। सो इक छिनमें उपशमैं, नामनीर तुम

लेत। होय सगेवर पत्रिनमें, विकसित कमल समेत ॥ कोकिलकंठ समान श्याम तन क्रोध जलंता। रक्तनयन फुंकार, मारविषकन उछालंता॥ फनको उंचो करें, वेग ही सनमुख आया। तब जन होय निशंक देख फनपतिको आया॥ जो चांपै निज पांवतें, व्यापै विष न लगार। नागदमनि तुम नामकी, है जिसके आधार॥ जिस रनमाहिं भयान, शब्द कर रहे तुरंगम। घनमे गज गरजाहिं, मत्त मानों गिरि जंगम॥ अति कोलाहलमाहिं बात जहं नहीं सुनीजै। राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै॥ नाथ तिहारे नाम तें, सो छिन माहीं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतें, अंधकार बिनशाय॥ मारे जहां गयंद कुंभ

हथियार विदारे। उमगे रुधिर प्रवाह, वेग जलसे विस्तारे॥ होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे। तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरे॥
दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक। तुम पद पंकज मन बसैं ते नर सदा निशंक॥
नक्र चक्र मगरादि, मच्छकरि भय उपजावै। जामें वड़वा अग्नि दाहतें नीर जलावै। पार न पावैं जास थाह नहिं लहिये जाकी। गर्जै अति गम्भीर लहर की गिनति न ताकी॥ सुखसों तिरैं समुद्रको जे तुमगुन सुमिराहिं। लोल कलोलनके शिखर पार यान ले जाहिं। महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं। बात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहै हैं॥ सोचत रहैं उदास

नाहिं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा॥ तुमपदपंकज—धूलको, जो लावैं निजअंग। ते निरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग॥ पांव कंठतैं जकर, बांध सांकल अति भारी। गाढ़ीबेड़ी पैरमाहिं जिन जांघविदारी। भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे बिललाने। सरन नहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही। बंधन सब खुल जाहिं। छिनमें ते सम्पति लहैं, चिन्ता भय विनसाहिं॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल। फनपति रन परचंड, नीरनिधि रोग महाबल॥ बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै॥ इस

अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय। यातें तुम पद भक्तको, भक्ति सहाई होय॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन संवारी। विविध वर्णमय पुहुप, गुंथ मैं भक्ति विथारी॥ जे नर पहरैं कंठ भावना मनमें भावैं। मानतुंग ते निजाधीन, शिवलछमी पावैं। भाषा भक्तामर कियौ हेमराज हितहेत। जे नर पढ़ैं सुभावसौं, ते पावैं शिव खेत॥ ४८॥

समाप्तम्

******

शुद्धाशुद्धि—पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१२	७	सामयिक	सामायिक
१४	१	स्थिरत	स्थिरता
२२	२	उपर	ऊपर
२२	३	"बार सम्यक्	बार "सम्यक्
२३	११	प्रसंशा	प्रशंसा
२५	५	सिप्त	सिद्ध
२६	२, ४, ७.	साधु	साहु
२६	४	अरिहंत	अरिहंत
२७	७	घर्म	धर्म
२८	६	श्रेयांसि	श्रेयांस

३०	४	चिश्च	चित्त
३१	५	भविजन	११ भविजन
३१	१०	भव्यजीवों ११	भव्यजीव
३२	६	आया	आपा
३२	१२	रहित,	रहित, १७ द्रव्य क्षेत्र काल भाव
३३	६	क्षायिप	क्षायिक
३४	३	१७ आय	२७ आय
	६	कर्म	कर्म
	१०	जस	जिस
३६	११	सम्य ज्ञान	सम्यक् ज्ञान
३७	७	२८ दुख जलधि उतारन	३८ दुख जलधि उतारन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४०	१०	मामएहस	मामएहस
४०	१२	१ स्वर्ग	
२ चक्र वर्ति ४१ प० पर देखें			
४१	५	अनन्तसु	अनन्त सुख
४६	३	ज्ञना	ज्ञान
५०	१३	सनान	समान
५७	१२	भय	भव
६४	२	ध्वात	ध्वांत
६५	७	पासक	मालक
७१	५	निजत्मा	निजात्मा
७१	१२	उकोस	उसको
७८	५	परमत्मा	परमात्मा
८१	१०	सम्मान	समान

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
६८	६	व न	घन
१०६	५	वन	सब
११५	२	िपल	त्रिशाला
११५	७	महावीरप्रसाद	महावीर स्वामी
१२५	११	भाग्य	योग्य
१३३	४	निहरो	निहारो
१३४	४	परखी	पारखी
१३६	१०	र जान	कर जान
१४२	१	तिधि	निधि
१४६	७	र	पुर
१६५	१०	प्रानी	प्राणी
१६५	१२	फटने	फटकने
१७२	३	आया	आपा

प्रतिज्ञा—पत्र

ता०.........१६

श्रीमान मान्यवर मंत्री जी महोदय !

सादर जय जिनेन्द्र

अपरञ्च मैने सामायिक कर्म स्वात्मानुभव के लिये आवशक समझ लिया है। अतः अब से मैं प्रति दिन जन्म पर्यन्त अथवा आज दिन······ ·········से·····················तक सामायिक करने की सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूं—करती हूं

कृपया एक प्रति "सरल सामायिक पाठ संग्रह" की भेज दीजिये बड़ी महरवानी होगी।

नामप्रतिज्ञा करने वाले का·····················

ग्राम································

पूरा पता···················

प्रतिज्ञाकरने की अवधि (कब से कब तक)

पुस्तक भेजने का पूरा पता

हस्ताक्षर·············

नोट—इस प्रतिज्ञा-पत्र को भर कर भेजने से इस पुस्तक की एक प्रति बिना मूल्य मिल जावेगी।